5·3
V2
वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि०)
प्रकाशन विभाग:- III ई-३१-लाजपत नगर-३
नई दिल्ली-२४

॥ ओ३म् ॥

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी द्वारा

वैदिक-प्रवचन

(ग्यारहवां पुष्प)

प्रकाशक:—वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि.)
६४, सरोजनी मार्केट विनयनगर, नई दिल्ली-२३

पुस्तक विभाग :—
III ई-३१ लाजपत नगर-३, नई दिल्ली-२४

प्रथमबार २०००] सितम्बर १९६९ [मूल्य १)२५ पैसे

पुस्तक मिलने के स्थान

१. ई-३१, लाजपत नगर-३
नई दिल्ली-२४

२. सी-४०५, सरोजनी नगर,
नई दिल्ली-२३

३. गोविन्दराम हासानन्द,
नई सड़क, दिल्ली

४. देहाती पुस्तक भंडार,
चावड़ी बाजार दिल्ली

५. डा. कमलसिंह,
बहादुर गंज, उज्जैन

६. कार्यालय साप्ताहिक 'संजय'
झालरा पाटन सिटी (राजस्थान)

७. स्काई लार्क,
६३ A राष्ट्रपति रोड, सिकन्द्राबाद (आंध्र प्रदेश)

सार्वदेशिक प्रेस, दिल्ली-६

धन्यवाद

२७ जुलाई से २ अगस्त १९६८ तक आर्य भवन जोरबाग में पूज्य ब्रह्मचारी जी महाराज के ७ प्रवचन हुए। कुछ ऐसा देखा गया है कि इस भवन में ब्रह्मचारी जी महाराज के जो प्रवचन होते हैं वह बहुत ही उच्चकोटि के होते हैं। इन्हीं प्रवचनों से प्रेरणा पाकर हमारी एक सदस्या ने ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों की एक पुस्तक पर कितना व्यय होता है इसकी पत्र द्वारा जानकारी चाही। जो उनके यहां जाकर उनको बता दी गई। उनके पतिदेव ने उसी समय ५०० रुपये का चैक काट कर दे दिया और साथ ही यह कहा कि समिति की अगली पुस्तक की १००० प्रति पर जो व्यय होगा उसको वह देंगे परन्तु उनका नाम नहीं आना चाहिए। उनकी इस इच्छा को पूर्ण करते हुए हम उनका नाम तो नहीं दे रहे परन्तु हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम उनका हृदय से धन्यवाद करें। हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि उनको तथा उनके परिवार को अपने पवित्र आशीर्वाद से सब प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त करायें और इस प्रकार के ज्ञान के प्रसार में उनकी रुचि बढ़ती रहे। उनके इस सात्विक दान से अन्य दानी सज्जन भी प्रेरणा लें और वह समिति के इस प्रचार व प्रकाशन कार्य में सहायता दें।

यह पुस्तक इससे बहुत पहले आपके हाथों में पहुंचाने की इच्छा थी परन्तु अभाग्यवश हमारा टेप रिकार्डर कई महीने खराब पड़ा रहा जिससे हमारा मासिक "वैदिक प्रवचन" भी कई महीने बन्द रहा और इस पुस्तक के लिए प्रवचन उतारे न जा सके। इस पुस्तक में ४ प्रवचन तो जोरबाग में दिये गये ७ प्रवचनों में से हैं और एक प्रवचन २० अक्तूबर १९६८ को जे० १० जोर बाग रोड पर दिया हुआ है तथा ३ प्रवचन ११,

१२, और १३ अप्रैल १९६९ को स्वामी योगेश्वरानन्द जी महाराज के आश्रम "योग निकेतन" ऋषिकेश में दिये हुए हैं। जिससे पूज्यपाद स्वामी जी महाराज का भी कुछ वक्तव्य सम्मिलित है और जिसने इन प्रवचनों की महत्ता को बहुत बढ़ा दिया है क्योंकि इनमें से २ प्रवचन तो बहुत गूढ़ सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हैं।

ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों का यह ग्यारहवां पुष्प है। हमें प्रसन्नता है कि आपने इन प्रवचन पुस्तकों को बड़ी श्रद्धा से अपनाया है और कई पुस्तकों के तो द्वितीय संस्करण समाप्त होकर तृतीय संस्करण भी प्रकाशित होने जा रहे हैं। आशा है भविष्य में भी आप इसी श्रद्धा के साथ इन पुष्पों को अपनाते रहेंगे और हमें इस प्रचार कार्य में आपका तन मन और धन से सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

मैं अपने सहयोगी श्री चन्द्रप्रकाश जी गुप्त एवं राममूर्ति शर्मा जी का बहुत-बहुत धन्यवाद करता हूं। इन्हीं के परिश्रम एवं प्रेरणा से यह कार्य बढ़ रहा है और प्रकाशन सुचारु रूप से चल रहा है।

अन्त में असीम शक्तिसम्पन्न उस परमपिता परमात्मा की कृपा का कोटि-कोटि धन्यवाद है जिसकी छत्रच्छाया के विना हम कुछ भी करने में असमर्थ हैं। वह भगवान् हमें शक्ति साहस प्रदान करते रहें जिससे हम इस सत्कार्य में लगे रहें।

भवदीयः—

III ई० ३१ लाजपतनगर
नई देहली-२४
जुलाई १९६९

वैजनाथ सहगल
प्रकाशन मन्त्री
वैदिक अनुसन्धान समिति

साम्यवाद और प्रजातन्त्र

[दिनाँक ३० जुलाई १९६८ को आर्य भवन जोर बाग नई दिल्ली में दिया हुआ प्रवचन]

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। आज हम सबसे पूर्व वह जो विचित्र वेत्ता है उस अपने देव की याचना करते चले जायें। हे परमात्मन्! आपने इस वेदमयी वाणी को रचा है, पवित्र प्रकाश को हमें दिया, जिस प्रकाश को पान करते हुये हम वास्तव में इस संसार सागर से पार हो जाते हैं। जब हम आपकी उसकी महिमा को विचारने लगते हैं, आपकी रचना पर विचार विनिमय करते हैं तो हमारे हृदय की जो तरंगें हैं वह मग्न होने लगती हैं, हमारा हृदय विभोर हो जाता है आपकी महिमा का दिग्दर्शन करता हुआ। बेटा! मानव का जीवन है, मानव का शरीर बना दिया परन्तु कैसा सुन्दर लेपन है और लेपन के निचले विभाग में रक्त विराजमान है, अस्थियां हैं और हमें कुच प्रतीत नहीं होता और कैसा सुन्दर लेपन है कि वह वस्तु हमें दृष्टिपात नहीं आतीं और आनन्द भी उन वस्तुओं की जो उत्पत्ति है उसका कारण भी वह लेपन ही बना करता है। तो मेरे उस देव की कितनी सुन्दर रचना है। जब हम उस प्रभु की रचना

पर विचार विनिमय करने लगते हैं तो हमारा हृदय विभोर होने लगता है और हम यह कहा करते है कि वह देव कितना विचित्र है।

मेरी माता नहीं जानती कि तेरे गर्भ स्थल में ही रक्त के ऊपर कौन लेपन कर गया। नस नाड़ियों के समूह के ऊपर कौन लेपन कर गया। उस ब्रह्म वेत्ता ने कितनी सुन्दर रचना रच दी और कैसे स्थान में जिसमें मानव की दृष्टि में अन्धकार ही अन्धकार रहता है। माता से यह प्रश्न किया जाये कि तेरा जो गर्भाशय है वह अन्धकार में है या प्रकाश में है तो उत्तर अन्धकार में है ही प्राप्त होगा। परन्तु वह प्रभु कितना कलाकार है, कितना प्रकाशमय है कि जो मानव की दृष्टि में अन्धकार है वह उस प्रभु रचनाकार का गृह है जहां मानव जैसे शरीर की रचना कर दी। जहां कितना सुन्दर लेपन कर देते हैं और नेत्रों को कितना सुन्दर बनाया। घ्राण है। प्रत्येक इन्द्रियों का कौन रचियिता है ? वह ब्रह्म है। आज हमें उस विश्वकर्मा के समीप पहुंचना चाहिये। हे विश्वकर्मा ! तू कितना महान् है ! आज प्रभु ! तूने विश्वकर्मा बन करके इस मानव जीवन का निर्माण किया है। कहीं मेरी प्यारी माता के शरीर का निर्माण, कहीं मानव के शरीर का निर्माण परन्तु एक ही स्थान है और नाना पुत्र और पुत्रियां माता पिता से उत्पन्न होती हैं परन्तु उनकी रूप रेखा भिन्न भिन्न हो जाती है। वहीं रक्त है, वही अस्थियां हैं, वही कण है परन्तु उनकी रचना में कितनी भिन्नता प्रतीत होती है। वह प्रभु कितना महान् वैज्ञानिक है।

आज प्रायः मानव यह कहा करता है कि वह प्रभु है ही नहीं। मैं भी यह उच्चारण कर सकता हूँ कि प्रभु नहीं है

परन्तु हृदय तो नहीं उच्चारण करता कि वह प्रभु है ही नहीं। प्रभु के न होने पर नाना प्रकार की टिप्पणियां चलती रहती हैं। अन्त में यह कहा जाता है कि वह प्रभु इतना महान् है, इतना सूक्ष्म है कि उसका वर्णन बुद्धि से और वाणी से अच्छी प्रकार करने का मानव में सामर्थ्य नहीं। मानव में इतना सामर्थ्य नहीं है कि वह प्रभु के होने का निर्णय अच्छी प्रकार दे सके। युक्तियां होती हैं। एक दूसरे की युक्ति को नष्ट कर देता है, वह अकाट्य भी हो जाती हैं परन्तु वह उनको भी समाप्त कर देता है अपनी धृति से न मेधा से परन्तु उसका जो वास्तविक स्वरूप है मानव उसका वर्णन इस वाणी से नहीं कर सकता। वह प्रभु वाणी से भी परे हैं आज हम उस प्रभु की महिमा का गुण गान गाते चले जायें।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषो ! मैं कोई अधिक तो चर्चा प्रकट करने नहीं आया। केवल अपने देव की याचना करने आया कि हे देव ! तू कितना महान् है। तेरी एक एक रचना कितनी महानता में परिणत रहती है। एक एक नस नाड़ी चलती है परन्तु उसका किस प्रकार सम्बन्ध है। हमारे इस भुज में एक,अणिमा नाम की नाड़ी होती है जिसको ऊंगलाकृति कहते हैं उससे द्वितीय जो सूक्ष्म अणिमा है उसमें एक नाड़ी होती है जिसका सम्बन्ध हृदय से होता है। कोई मानव हृदय को प्रबल बनाना चहाता है तो वह जो अणिमा नाम की जिसे उंगलाकृति कहते हैं उसके द्वारा चन्दन और नाना प्रकार की जो शक्तिशाली धातुयें हैं उनको अणिमां को अर्पण कर दे तो जिसका हृदय सूक्ष्म होता है उसका हृदय प्रबल हो जाता है। उसका हृदय शक्तिशाली बन जाता है क्योंकि उस नाड़ी में यह विशेषता होती है कि प्रबल बना देती है। नाना प्रकार की जो शीतल

वस्तुयें हैं जैसे चन्दन है, अगृति है, कापरुणी है, धीष्ट है, जैसे जायफल है और जावित्रि अतियों में जब इन नाना प्रकार की औषधियों का मिश्रण हो जाता है तो नित्य प्रति जो हृदय विशेष कर सूक्ष्म होता है उस अणिमा को उसमें लगभग एक पहर तक उस अणिमा को जल का भोग लगा करके उसमें अग्रित करता रहे तो उसके हृदय की गति वास्तव में प्रबल हो जाती है। हृदय शक्तिशाली बन जाता है। तो मैं उस प्रभु की महिमा का कहां तक वर्णन करूंगा। मेरे में तो इतना सामर्थ्य ही नहीं। मैं तो आज एक सूक्ष्म सी चर्चा करने चला कि आज हम हृदय को ऊंचा बनाना चाहते हैं, विशालता में ले जाना चाहते हैं। मानवता की उस महानता पर ले जाना चाहते हैं जहां मानव अपने जीवन को, अपनी मानवता को ऊंचा बनाना चहाता है। अब मैं अपने प्यारे महानन्द जी से उच्चारण करूंगा कि अब वह अपने कुछ उद्गार प्रकट करें।

ओं मया सर्वत्र प्रजा वसु इदम् माम् धेनु रहिणाम्।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! ऋषि मंडल! भद्र समाज! मुझे आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कुछ समय के पश्चात् यह अमूल्य समय प्रदान किया। इस सूक्ष्म से समय में उच्चारण तो क्या कर सकते हैं परन्तु कुछ सूक्ष्म सा परिचय देने आया हूं। मुझे अपना परिचय नहीं देना है, पूज्यपाद गुरुदेव का भी परिचय नहीं देना है, हमें तो केवल यह परिचय देना है कि यह जो मानव समाज है, आज का राष्ट्रवाद है यह किस आंगन को चला जा रहा है। न प्रति आज का जो प्रवाह है उनका न प्रति कहां अन्त होगा। यह धारायें इतनी तीव्र गति से चली जा रही हैं जैसे गंगा में जल अपनी गति कर रहा है इसी प्रकार मानव की प्रवृत्तियां गति करती चली जा रही हैं। आज हम

यह उच्चारण करने आये हैं कि आज का मानव कहीं साम्य-वाद की घोषणा करता है तो कहीं प्रजातन्त्र की घोषणा करता है परन्तु आज बुद्धिमानों को यह विचारविनिमय करना है कि हमें कौन से पथ को अपनाना है। वास्तव में साम्यवाद और प्रजातन्त्र क्या है इस पर हमें विचार विनिमय करना है।

आज भिन्न-भिन्न प्रकार की विचार धारायें दृष्टिगोचर आती हैं। कोई अपने को रुढ़िवाद में ले जाता हैं कोई मानव राष्ट्र को हिन्दुत्व के नाम से वर्णन करता है। मैं यह उच्चारण करने आया हूँ कि राष्ट्र जो होता है यह रुढ़िवाद नहीं होता। इसमें साम्य विचार होते हैं, इसमें सभी मानवों का उच्चारण करने का अधिकार होता है परन्तु जो इसका द्रोही होता है उसे एक भी वाक्य न उच्चारण करने दो। जब वह द्रोही वाक्य उच्चा-रण करता है एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र के आंगन में देना चाहता है तो वह राष्ट्र का यथार्थ में द्रोही होता है।

साम्यवाद क्या है ? आजसाम्यवादी प्राणी कहते हैं कि हम सब समाज को एकसा दृष्टिपात करना चाहते हैं प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्याएँ, हमें एक सा प्रतीत हो जायें। आज इसकी घोषणा ही घोषणा है अथवा उनके क्रियात्मक में भी है या नहीं। जब प्रत्येक प्राणी इस प्रकार की विचारधारा में आ जाता है तो उस प्रजा का कोई भी राजा नहीं होता। साम्य-वाद कहते ही उसे हैं जहां न कोई अधिराज होता है, सब प्रजा साम्यता में परिणत हो जाती है। वहां मानव के द्वारा अपने कर्त्तव्य का एक लक्ष्य होता है और जहां निर्धन प्राणियों को लेकर जो प्राणी चलता है और अपनी मानवता को ऐश्वर्य में ले जाना चाहता है उसको आज साम्यवाद कहना यह मानवता के लिये एक प्रकार का मानव मानव के लिये आघात एक बड़ा

आघात होता चला जा रहा है। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से इस विषय में बहुत टिप्पणियां कीं, विचार विनिमय भी किया कि यह साम्यवाद क्या है। तो मुझे मेरे पूज्य गुरुदेव ने यह कहा था कि साम्यवाद मानवको साम्यता देताहै सबको एकसा बनाता है। आज इसको हम एकसा कैसे दृष्टिपात कर सकते हैं जब आज प्रजा के नेतृत्व करने वाला राजा बना हुआ है परन्तु साम्यवाद में कोई किसी का राजा नहीं होता है। साम्यवाद में सेवक होता है और यह निश्चय होता है कि जो सेवक होता है वही संसार में प्रबल होता है और साम्यवाद में सभी प्राणी सेवक होते हैं।

हमारे यहां जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है तो उस समय यह समाज सब साम्यवाद की छत्र छाया में रहता है परन्तु उनके प्रारब्ध, उनकी क्रियता उनके साथ साथ रमण करती रहती है। उनका न कोई राजा होता है न अधिराज होता है केवल कर्त्तव्य का पालन करते ही चले जाते हैं। सब अपने-अपने कर्त्तव्यवाद में संलग्न होते हैं। आज हम साम्यवाद की घोषणा को देते चले जाते हैं, साम्यवाद को लेकर चलते हैं परन्तु हमारे विचार में ही नहीं आता कि आज का साम्यवाद क्या है ? इसको साम्यवाद कैसे कहा जायेगा। आज प्रजातन्त्र की घोषणा करते हैं, हम प्रजातन्त्र लाना चाहते हैं। जब प्रजा का प्रत्येक प्राणी अपने कर्त्तव्यवाद में संलग्न हो जाता है और वह यह जानता है कि यह मेरा राष्ट्र है और जो मानव उनका नेतृत्व करने वाला है तन्त्र का जो तन्त्रवाद को ऊंचा ले जाना चाहता है मानो जो नेतृत्व करने वाला होता है वह प्रजा का सेवक स्वीकार कर लेता है और यह जानता है कि मैं सेवक हो गया हूं, मुझे आज इस प्रजा का ऐश्वर्य अपने में संग्रह करने का

अधिकार नहीं है और जब इस प्रकार की भावना इन दोनों में आयेगी तो वही प्रजातन्त्र है और वही साम्यवाद है। दोनों के अन्त में सामान्य विचार हो जाते हैं।

आज जब आज के राष्ट्र में मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि जो द्रव्यपति है वह मुझे द्रव्यपति दृष्टिपात आ रहा है और जो निर्धन है वह मुझे अन्न से पीड़ित होता चला जा रहा है। क्या यह प्रजातन्त्र है ? या इस राष्ट्र को रक्त का पिपासी उच्चारण कर सकते हैं। जब मुझे इस प्रकार की प्रबलताएं स्मरण आती रहती हैं तो मेरा हृदय यह पुकारने लगता है कि इस समयमानवता नहीं है केवल आज द्रव्यपति द्रव्य को एकत्रित करने में लगा हुआहै। आज न मानव अपने ऊपर दया करता है और न दूसरों के ऊपर दया करता है वह केवल अपनी रसना इन्द्रियों को और उपस्थ इन्द्रिय दोनों के आंगन में यह समाज लगा हुआ है। यह न अपने ऊपर कोई दया है और न प्रजा के ऊपर कोई दया है। इसी प्रकार आज हम यह उच्चारण कर सकते हैं परन्तु आज मैं आलोचना करने नहीं आया और न कोई इसकी निन्दा करने ही आया हूँ जो मुझे दृष्टिपात आ रहा है। आज मेरी प्यारी माताएं अपने सिंगार की लोलुपता में इतनी संलग्न हो चुकी हैं कि उन्हें सिंगार चाहिये, उनके द्वारा उनका चरित्र रहे या न रहे। इसको राष्ट्र कहेंगे, इनको माताएं कहेंगे। मैं किसी किसी काल में इस आश्चर्य में हो जाता हूं कि इनको माता कहना चाहिये अथवा द्रव्यपति कहना चाहिये अथवा इसको सिंगार वेत्ता कहना चाहिये। मैं इन वाक्यों को स्पष्टता से वर्णन नहीं करना चाहता परन्तु यह उच्चारण अवश्य करने आया हूं कि जब मुझे ऐसा प्रतीत होता है ये परालब्ध का ही

विचार हैं परन्तु मानव का जीवन जब परालब्ध से बना है तो परालब्ध पर मानव की आस्था होनी चाहिये। आज हम प्रजातन्त्र में पहुँचना चहाते हैं, आज हम साम्यवाद की भी घोषणा करते हैं, साम्यवादियों को यह विचार विनिमय कर लेना चाहिये कि मानव के साथ में तीन प्रकार के कर्म होते हैं—क्रियात्मक, संचित और परालब्ध। जब यह इस प्रकार के कर्म होते हैं, जब परालब्ध इस प्रकार साथ-साथ चलता है, वह परालब्ध मानव को ऊंचा बनाता है, तुच्छ बनाता है। उसी परालब्ध के साथ-साथ यह समाज चलता रहता है। परन्तु उस परालब्ध पर आस्था न होने के कारण जितने यह सब वाद हैं, जिसमें हमारा एक दूसरे राष्ट्र से संघर्ष है यह उसी काल में होता है जब हमें अपने ऊपर आस्था नहीं होती। आस्था होना हमारे लिये बहुत अनिवार्य है।

आज हम यह विचारने लगते हैं कि आज हमारी सीमाओं पर आक्रमण होने जा रहा है, आज हम अपनी सीमाओं की रक्षा करने चलें परन्तु क्या सीमाओं की रक्षा इस प्रकार हो सकेगी। सीमाओं की रक्षा तो कर्त्तव्यवाद से होती है, वह गम्भीरता से होती है। गम्भीर व्यक्ति कौन होता है? जो अपने राष्ट्र की, अपनी मानवता की परिस्तिथियों को जानता है, जानता कौन है? वही जानता है जिसके द्वारा कर्त्तव्यवाद है और जो यह जानता है कि तू आज कल नहीं रहेगा, तू भी अपने जैसा बना करके यहां से चला जाये क्या वह मानव जीवन में कदापि सफल हो सकेगा और न वह राष्ट्र ही सफल हो सकेगा। इसलिये प्रत्येक मानव प्रत्येक मेरी प्यारी माताओं और ऋषि मण्डल को जानना है कि आज हम किस क्षेत्र में जाना चाहते हैं। आज जब मैं धर्म के ऊपर लेता हूं तो वहां

मुझे कुछ और ही प्रतीत होता है। वह न साम्यवादी है और न प्रजातन्त्र हैं। वह क्या है ? एक बुद्धिमान् हो गया तो वह जानता है कि तू बुद्धिमान् है तू भी अपनी त्वचा के आनन्द में संलग्न हो जा। वह भी एक सोटे को ले करके चल देता है न उसे अपनी प्रजा का, न राष्ट्र का ध्यान है वह केवल उसका जो आनन्द है उसी में आनन्द ही आनन्द मनाता रहता है। यह है धर्मों की व्यवस्था। मैं उन धर्मों के क्षेत्रों में नहीं जाना चाहता हूँ। मैं केवल यह उच्चारण करना चाहता हूं कि आज हमें साम्यवादी वनना है, प्रजातन्त्रवादी बनना है तो दोनों में कर्त्तव्यवाद की आवश्यकता है। प्रजा इतनी महान् होनी चाहिये राजा इतना महान् होना चाहिये, कि राजा के चरित्र का प्रभाव प्रत्येक मानव और प्रत्येक देवकन्या पर हो तो यह प्रजातन्त्र ऊंचा बन सकेगा और इसी प्रकार यह साम्यवाद है। साम्यवाद वही ऊंचा बन सकेगा जिस साम्यवादी का चरित्र ऊंचा होगा, मानवता ऊंची होगी, शान्त्वना होगी उसके मन में और केवल अपनी एक ऊंची धारा को लेकर चलता है। उसकी छत्रछाया में यह संसार संलग्न हो जाता है, प्रत्येक राष्ट्र उसकी छत्रछाया में आ जाते हैं। आज मैं इसका वर्णन अच्छी प्रकार करने नहीं जा रहा हूं केवल यह उच्चारण करने जा रहा हूँ कि राजा के राष्ट्र में संग्रह करने वाले प्राणी नहीं होने चाहिये। जितना संग्रह किया जायेगा और संग्रहवादी प्राणी होंगे उतना ही राष्ट्र का उदर भ्रष्ट होता है, तो उदर में क्षति होती है, जमाव होता है, उस राष्ट्र के राजा को सफलता प्राप्त नहीं होती। इसलिये हे संसार वादियो! तुम्हें विचारना है कि आज संग्रह करके नहीं चलना है। राष्ट्र को देना है, राष्ट्र को ऊंचा बनाने में, प्रजा को ऊंचा बनाने में

आज तुम्हें संग्रह नहीं करना है। मैं इसका विरोधी नहीं हूँ कि संग्रह नहीं होना चाहिये परन्तु विरोधी इस वाक्य का हूं कि संग्रह उतना होना चाहिये जिससे तुम्हारा उदर सुन्दर रहे, राष्ट्र के उदर में किसी प्रकार की हानि न आये। जब इस संसार का, इस राष्ट्र का निर्माण होता है तो हमारे शरीर से लिया जाता है, ब्राह्मण इसके द्वारा होते हैं, क्षत्रिय होते हैं, वैश्य होते हैं। जब वैश्य संग्रह करने वाला बन जाता है, अति संग्रह कर लेता है तो वह राष्ट्र का उदर भ्रष्ट हो जाता है। जब उदर भ्रष्ट हो गया तो राष्ट्र कैसे सम्पन्न होगा। आज मैं कोई विशेष चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूं केवल यह वाक्य अवश्य प्रकट करने आ पहुंचा हूं कि आज के इस समाज को, आज के इस मानव को, अपने इस राष्ट्र को ऊंचा बनाने में, अपनी सीमा की रक्षा करने में, क्षत्रिय बलवान् और चरित्रवान् होने चाहिये। राजा स्वयं चरित्रवान् होना चाहिये। आज हमारी आकाशवाणी जिस भूमि पर जा रही है, जिस इन्द्रप्रस्थ में महाराजा दलीप जी ने राज्य किया था रघु प्रणाली में, इसी इन्द्रप्रस्थ में माराजा हयुधिष्ठिा की पताका फहराई, इस इन्द्रप्रस्थ में न जाने क्या क्या हुआ, यवनों का राष्ट्र भी रहा परन्तु आज पुनः से इसमें चेतनता आगई है, इन्द्रप्रस्थ में चेतनता आती चली गई परन्तु आज के राष्ट्रवादियों का मैं कहां वर्णन कर सकता हूं। आज के राष्ट्रवाद में प्रजातन्त्र की घोषणा करते रहते हैं। क्या प्रजातन्त्र ऐसे ही बनेगा ? अरे राष्ट्रवादियो जैसे तुम संग्रह कर रहे हो तो क्या यह राष्ट्र ऐसे ही ऊंचा बन जायेगा ? यह ऊंचा नहीं बनेगा। समय निकट आ रहा है जब इस संसार में अग्नि प्रदीप्त होने वाली है यह तो अग्नि की वेदी पर जा रहा है। एक समय वह

आयेगा कि तुम अग्नि के मुख में चले ही जाओगे।

हे मानव ! आज विचारविनिमय करते चले जाओ। अपनी मृत्यु को क्यों नहीं विचारते। आज के मानववाद में भ्रष्टवाद का एक ही कारण है कि वह अपनी मृत्यु को अपने से पूरी कर रहे है। जब मानव अपनी मृत्यु को स्मरण कर लेता है कि एक समय मृत्यु आनी है और तुझे कर्त्तव्यवाद करना है, कर्त्तव्य करते हुये मृत्यु आनी है, मानो इस शरीर को त्यागना है, वह इस राष्ट्र को ऊंचा बना सकता है अन्यथा यहां कितने होकर चले गये। अरे ! इसी इन्द्रप्रस्थ में जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया यहां दुर्योधन आ गये। दुर्योधन ने यह विचारा कि यह पांडवों का यज्ञ भ्रष्ट हो जाये, इनके यज्ञ में कुछ न रहे परन्तु देखो वहां ईश्वर होता है। जहां कोई प्राणी किसी को नष्ट करना चाहता है तो उसके नष्ट करने से नष्ट नहीं होता परन्तु जब नष्ट होता है तो अपने कर्मों से ही नष्ट होता है, वह अपने परालब्ध से ही नष्ट होता है, किसी के नष्ट करने से कोई मानव नष्ट नहीं हुआ करता, यह विचार लो। जब यहां इस प्रकार का यज्ञ हुआ तो भी इन्द्रप्रस्थ में न रहे, महाराजा दलीप भी न रहे, यहां नाना राजा हुये, विक्रम नहीं रहे। महाराजा दुर्योधन ने तो हस्तिनापुर के आंगन में विराजमान होकर यहां तक कहा था कि मैं पांडवों को इतनी भी भूमि नहीं देना चाहता जितना श्वास का एक परमाणु पृथ्वी पर गिर जाता है जो इतना भी नहीं देना चाहता था वह कहां चले गये ? उनका संसार में हमें चिन्ह भी प्राप्त नहीं होगा। अरे आज के मानव ! तू भी तो कुछ विचार ले। हे मानव ! आज भी इन्द्रप्रस्थ की भूमि पर विराजमान होकरके कुछ विचार लो कि इन्द्रप्रस्थ की भूमि किसी को नहीं हुई।

इन्द्रप्रस्थ ही नहीं यह प्रभु का मण्डल ही किसी का नहीं होता। इसमें जो भी आता है कर्म करता चला जाता है। ऊंचे कर्म लो, क्लिष्ट कर्म कर लो, ऊंचे परालब्ध कर लो, क्लिष्ट परालब्ध वना लो, परन्तु यहां साम्यवाद को विचार लो, प्रजातन्त्र को विचार लो, उसके अनुकूल कर्म कर लो अन्यथा न कर लो परन्तु मानव का यह शरीर सदैव इस प्रकार का नहीं रह पाता। इसके पश्चात् यह भी है कि अब मैं कठोर वाक्य उच्चारण नहीं करना चाहता क्योंकि मेरे पूज्यपाद गुरु देव ने कहा है कि तुम कटु उच्चारण करते हो परन्तु मैं कटु उच्चारण नहीं करता केवल पदार्थ को ज्यों का त्यों उच्चारण कर देता हूं और मैं करता ही नहीं क्योंकि कहां तक करूं उच्चारण करना ही ऐसा है। आज के समाज में उच्चारण करने से लाभ भी नहीं है परन्तु मैं यह जानता हूं कि हमारे जो उद्गार हैं, उन्हें प्रजा जाने न जाने, क्रिया में लाये न लाये परन्तु वायु मण्डल में यह सब विचार परिणत हो जायेंगे और जो मृत विचार हैं उन्हें कुछ न कुछ नष्ट करते ही चले जायेंगे, इसीलिये हम इन वाक्यों को उच्चारण किया करते हैं।

आज मैं यह उच्चारण करता चला जा रहा था कि आज हम यह नहीं विचारते कि मृत्यु को भी विचारें और जो मृत्यु को नहीं विचारेगा वही समाज में, इस संसार में, इस प्रभु के मण्डल में, इस प्रकृति के गर्भ में एक समय वह आता है कि प्रकृति उसे ठुकरा देती है। प्रकृति उसे त्याग देती है क्योंकि प्रकृति उसी प्राणी की साथी बनती है जो मानव अपनी मृत्यु को स्मरण कर लेता है। जो यथार्थ चिन्तन करता है प्रकृति उसे अपनी गोद में ले लेती है। जो यहां संसार में आकरके

यथार्थ चिन्तन नहीं करता, क्लिष्ट चिन्तन करता रहता है, मानव से दूर चला जाता है तो एक समय वह आता है कि प्रकृति उसे अपने से ठुकरा देती है । उसका संसार में कोई नहीं होता । उसके जो परालब्ध हैं वह उसे धिक्कारते हैं इसी-लिये मैं तो यह कहने आया हूं कि हे मानव ! तू अपनी मृत्यु को भी स्मरण कर । जब तेरी मृत्यु आयेगी तो इस संसार में तेरा कोई साथी नहीं बनेगा परन्तु वह परालब्ध ही तुम्हारे साथ जायेगा । इसीलिये आज मैं उच्चारण करने आया हूं कि राष्ट्र को, समाज को ऊंचा बनाने में सदैव तत्पर रहो क्योंकि यही तुम्हारा प्राण है, इसीमें मानव का जीवन है, इस जीवन में ही जीवनता प्राप्त होती रहती है ।

आज मैं सदियों की चर्चा प्रकट कराने नहीं आया हूं, करोड़ों की चर्चा कराने नहीं आया । मेरे प्यारे गुरुदेव तो कहीं ब्रह्मा की चर्चा प्रकट करते रहते हैं, कहीं शिव की करते हैं कहीं आंखों की करते हैं तो कहीं हजारों की चर्चा प्रकट करने लगते हैं परन्तु मैं तो यह उच्चारण करने आया हूं, वर्त-मान के अनुकूल, आज का जो यह मानववाद है इसको स्वयं ही विचारना होगा और नहीं विचारा जायेगा तो वह समय निकट आ रहा है जब मानव मानव के हृदय में अग्नि प्रदीप्त होती चली जायेगी । आज वह समय दूर नहीं है ।

जब मैं इस संसार को स्वप्नवत् ही दृष्टिपात करता हूं तो मुझे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि जैसे पृथ्वी के इस आंगन में इस समय अग्नि प्रदीप्त होने जा रही है और शनैः शनैः वह अग्नि मानव के निकट को आती चली जा रही है । समय आ रहा है जब यह मानव, यह जितने सब राष्ट्र है एकत्रित हो करके अग्नि की वेदी में भस्म हो जायेंगे परन्तु बचेगा

कौन ? जो यथार्थवादी है, जो महान् है। महान् पुरुषों को काल नहीं ले जाता। महापुरुष को यह मिथ्यावाद मिथ्यावादी नहीं बना सकता।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कल के वाक्यों में प्रकट कराते हुये कहा था कि दो प्रकार के महापुरुष होते हैं। उनकी भांति तुम भी अपनी कल्पना करते चले जाओ। उसी कल्पना से यह संसार, मानववाद ऊंचा बनता चला जायेगा। आज जब मैं राष्ट्रवाद की कल्पना त्याग कर केवल धर्म के क्षेत्र में जाता हूं जहां नाना प्रकार के धर्म के क्षेत्र हैं यहां कोई यवन बना हुआ है तो कोई ईसा के मानने वाला बना हुआ है, कोई शंकरको मना रहा है तो कोई दयानन्द का पुजारी बना हुआ है, यहां नाना प्रकार के महापुरुषों के पुजारी बने हुये हैं, कोई कृष्ण का पुजारी है तो कोई मुझे राम का पुजारी दृष्टिपात आता है परन्तु जब इन सबके अन्तिम विचार लेते हैं तो एक ही विचार है कि मानवता होनी चाहिये। ईसा के मानने वाले भी कहते हैं कि शिष्टाचार और मानवता होनी चाहिये औंर मुहम्मद के मानन वाले भी यही कहते हैं कि मानव के द्वारा मानवता होनी चाहिये। दयानन्द के विचार-वादी भी और महात्माओं के अग्रणियों के नाना विचारवादी भी यही कहते हैं कि मानवता होनी चाहिये परन्तु यह मानवता केवल उनके एक संकुचित विचार में रह जाती है परन्तु जहां मैं ऋषि मुनियों के विचार लेता हूं तो ऋषि मुनि भी यही कहते हैं कि आज मानवता के क्षेत्र में धर्म होना चाहिये और धर्म क्या है ? धर्म नाम विचार का है। आज प्रायः मानव यह कहता है कि अन्न की एक बड़ी समस्या बनी हुई है, अन्न की बड़ी सूक्ष्मता है इसीलिये दूसरों के गर्भाओं को निगल जाना

चाहिये। मांस इत्यादि को पान करना चाहिये, उससे हमारे उदर की पूर्ति हो जायेगी। नाना प्रकार की विचार धाराएं हैं परन्तु मानव का धर्म यह नहीं कहता। आज जो मानव धार्मिक बनना चाहता है और वह यह कहता है कि मांस भक्षण करना कोई पाप नहीं है और गर्भ (अण्डा) में कोई जीव नहीं होता हैं। मैं यह जानना चाहता हूं कि यदि तुम्हारे मस्तिष्क में से कुछ रक्त ले लिया जाये और दूसरा प्राणी उसको पान कर लेता है तो कितना कष्ट होता है। अरे! जिनमें जीव है, जिन प्राणियों में जीवात्मा है और आज जिनका तुम रक्त लोगे, रक्त के पिपासी बनोगे उसको उतना ही कष्ट होगा जितना तुम्हें स्वयं कष्ट होता है। धर्म उसी को कहते हैं कि ज़ो वस्तु हमें स्वयं को कष्टमय प्रतीत होती है वह दूसरों के लिये भी इसी प्रकार की है। आज उसे भी हम उसी दृष्टि से दृष्टिपात करेंगे तो हमारा धर्म हो जायेगा। धर्म किसी की सम्पदा नहीं होती, धर्म तो सभी का एकसा होता है। धर्म केवल मानवता तक ही सीमित नहीं रहता वह ईश्वर तक रहता है, वह वायु मण्डल तक रहता है। इसी प्रकार आज हम यह विचार विनिमय करते चले जायें कि धर्म क्या है? जिसको हम दूसरों को कष्ट देना चाहते हैं अपने आनन्द के लिये, रसना के आनन्द के लिये वह स्वयं हमारे लिये पाप इस प्रकार बन जाता है। जब धर्म की इस प्रकार की धाराएं बन जायेंगी तो यह जो नाना रूढ़िवाद हैं यह सब नष्ट हो जायेंगे और जहां रूढिवाद नष्ट हुआ, मानवता आ जाती है जहां मानवता आ गई वहीं वैदिकवाद आ जाता है, प्रकाशमय समाज बन जाता है।

देखो ऋषि दयानन्द ने, मैं तो देखो उसे ऋषि कहा करता

हूं क्योंकि ऋषियों वाले जिसमें लक्षण होते हैं, उसीने घोषणा करते हुये कहा था कि समाज में, राजा को भी यही कहा कि हे राजन्! तू कहां जा रहा है, तू अपने मानवत्व को ऊंचा नहीं बनाता, सभी को उन्होंने मानवता ऊंचा बनाने के लिये कहा था, वैदिकता को अपनाने के लिये, प्रकाश को अपनाने के लिये कहा। आज उस महापुरुष की वार्त्ता सर्वोपरि हैं। उन्हें स्वीकार करना हमारा कर्त्तव्य है। वास्तव में तो हम उनके विचारों को विचार ही नहीं सकते। उनके वाक्यों पर तो दृष्टिपात जब करें जब उनके वाक्यों को अच्छी प्रकार विचार लें। उनके जो उद्‌गार हैं वह इतने महान् हैं जो ऋषि परम्परा के आधार से जो ऋषि के उद्‌गार होते हैं वह उनके विचार हैं। आगे रहा शंकराचार्य की वार्त्ता–शंकराचार्य के वह विचार जो कणाद और गौतम के विचार आदि ब्रह्मा के विचार। इसी प्रकार इन सब महापुरुषों की वार्त्ताओं में कोई न कोई तथ्य होता और उस महानता को अपनाने के लिये यह सभी मानव का कर्त्तव्य होता है कि उसको अपनाकरके रूढ़िवाद को त्यागना और यथार्थवाद को लाना मानव का कर्त्तव्य होता है। इसी को कर्त्तव्यवाद कहते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कल के वाक्यों में बहुत सुन्दर विचारधारा प्रकट की कि दो प्रकार के महापुरुष होते हैं। उन दो प्रकार के महापुरुषों की हमें ऊंची कल्पना करनी चाहिये।

आज हम किसी मानव को अपने आंगन में लाना चाहते हैं, अपने आधीन बनाना चाहते हैं वह इस प्रकार आधीन नहीं बनेगा आधिन तब बनता है जब मानव मानवीयता में सूक्ष्म होता है परन्तु जब वह मानवियता में महान् होता है, विचित्र होता है उस मानव को कोई पराधीन नहीं कर सकता। राजा

उसी को पराधीन कर सकता है राष्ट्र के नियम के अनुकूल नहीं चलेगा और जिसका राष्ट्र के नियमों से भी ऊपर उपराम हो गया है उसको राजा अपने आधीन नहीं बना सकता। इसी प्रकार आज जो प्रभुक्त जो धर्म है उसको अपनाना वह इस समाज और राष्ट्र से ऊंचा बनना है। उस मानव का संसार में कोई तिरस्कार नहीं कर सकता। उन प्राणियों का तिरस्कार होता है जो अपनी मानवता से नीचे चले जाते हैं। संग्रह करने लगते हैं, संग्रह करके केवल वह इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे स्वेति नक्षत्र, अवरेत में नष्ट हो जाता है। मैं आज अधिक चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ मैं तो केवल यह उच्चारण करने आया हूं कि आज मानव भिन्न-भिन्न प्रकार का नाद देता है, आज कोई प्रजातन्त्र का घोष करता है तो कोई साम्यवाद का परन्तु साम्यवाद और प्रजातन्त्र दोनों एक ही हें परन्तु उस काल में जब अपने अपने कर्त्तव्य का पालन किया जाये। आज कोई नेतृत्व करने वाला अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा परन्तु आज मुझे कष्ट यही है कि अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कहते और घोष करते हैं। आज जो प्रजातन्त्र का घोष करने वाले है आज जब उनके के यहां नाना प्रकार के ऐसे त्वचा के ऐश्वर्य हैं, नाना ऐश्वर्य हैं और कैसे ऐश्वर्य हैं कि जिनको साधारण समाज श्रवण करता हुआ मानो वह भ्रष्ट हो जाता है, आज जिनके द्वारा इस प्रकार सामग्री हो वह प्रजातन्त्र की घोषणा करें तो यह प्रजातन्त्र तो अग्नि के मुख में ही है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसीलिये मैं कहा करता हूं कि हे बुद्धिमान् ब्राह्मणजन ! तू चल और घोष करने वाले को विचार और उससे घोष कर कि तू कहाँ जा रहा है, आज तू भ्रष्टाचार की वेदी पर न जा, यह द्रव्य तेरे साथ

नहीं जायेगा, तेरी मानवता तेरे साथ जायेगीं, यह त्वचा का आनन्द तेरे साथ नहीं जायेगा परन्तु तेरा जो कर्त्तव्यवाद है वह तेरे साथ चला जायेगा। यहां महापुरुष वही होते हैं और राजा वही होते हैं जिनके द्वारा महानता बिखरी हुई होती है, उनकी विचारधारा व्यापक होती है और उनकी विचार-धारा में भ्रष्टाचार नहीं होता और वह इस समाज और राष्ट्र को ऊंचा बना देते हैं और उनकी यह महानता प्रजा को ऊंचा बना देती हैं मेरे पूज्यपाद गुरुदेव यदि मुझे कल आज्ञा देंगे तो मैं कल धर्म के सम्बन्ध में कुछ विवेचना कर सकूंगा। आज तो मैं केवल यह उच्चारण करने आया हूं कि आज का जो राष्ट्रवाद है, आज के राष्ट्रवाद में कोई प्रजातन्त्र कि लाना चाहता है तो वहां भी ऐश्वर्य नहीं है, साम्यवाद लाना चाहता है तो वहां भी ऐश्वर्य नहीं है और न वहां वह महान् क्रान्ति है। कल मैं महाक्रान्ति के सम्बन्ध में प्रकाश दे सकूंगा कि महाक्रांति कौनसी होती है और क्या करती है। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं उच्चारण कर सकूंगा। यदि गुरुदेव कृपा न करेंगे तो मैं इन विचारों को क्यों दूंगा, मुझे प्रयोजन ही क्या है परन्तु कोई वाक्य नहीं यदि समय देंगे तो और यह दयालु किसी काल में इतने हो ही जाते हैं कि यह समय प्रदान कर ही देते हैं जब यह आनन्दमय होते हैं परन्तु यह किसी काल में भी मेरा तिरस्कार नहीं करते। "भवेती कामाः वद्रूसणी रुद्रो समयती ब्रह्मा व्याप्नोती कर्मणा" यह जो व्यापक कर्म करने वाला प्राणी होता है वह सदैव अपने हृदय से, अपनी मानवीयता से उन वाक्यों का उच्चारण करता है जिनमें राष्ट्रवाद गुंथा होता है। तो इसीलिये मैं आज दोनों की समालोचना नहीं उनकी तन्त्रता, उनकी विचार धाराएं

देना चाहता था परन्तु मैंने संक्षिप्त परिचय दिया। यदि कल मुझे समय मिलेगा तो मैं महान् क्रान्ति कैसे आती है और महान् क्रान्ति मानव को कैसे अपने वशीभूत कर लेती है प्रकट करूंगा। कल यह विचारधारा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रकट कर दें अथवा मुझे समय देंगे मैं उच्चारण कर सकूंगा। तो आज का यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है मैं अपने पूज्यपाप गुरुदेव से अब आज्ञा चाहूँगा।

धन्य हो !

मेरे प्यारे ऋषि मण्डल ! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने बहुत ही सुन्दर विचार दिये परन्तु कहीं कहीं कुछ सूक्ष्मता तो रह ही जाती है। कल मेरे प्यारे महानन्द जी यह भी प्रकट करेंगे क्रि महान् क्रान्ति कसे आती है। इनके विचार श्रवण करने का सौभाग्य मिलेगा। आज के उद्‌गार तो इनके सुन्दर रहे कहीं कटुता में तो चले ही जाते हैं उसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है। आज इन्होंने दो प्रकार के राष्ट्रवाद की विवेचना की है, एक वह विवेचना है जो साम्यवाद जिसका मानव के शरीर से निकास हुआ है और एक वह जिसे प्रजातन्त्र कहते हैं जिसका मानव के मन वचन और कर्म से विकास हुआ है। मानव के जो साम्य विचार हैं वह तो मानव के मानवीय विज्ञान से उत्पन्न हुये क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इसका इससे विकास है और इसी को साम्यवाद कहते हैं। जहां बुद्धिमान् ब्राह्मण होते हैं, क्षत्रिय बलवान् होते हैं, वैश्य जहां संग्रह करने वाले नहीं होते हैं और शूद्र बुद्धिमान जो नहीं होते अपने कर्त्तव्य का पालन करते चले जाते हैं तो इसको कहते हैं साम्यवाद और जो प्रजातन्त्र है उसका जो निकास है वह मानव के मन, वचन, कर्म से उत्पन्न हुआ है। वही प्रजा-

तन्त्र ऊंचा बन सकता है जिस राजा की प्रजा मन, वचन, कर्म से राष्ट्र के हित में होती है यदि प्रजा मन वचन, कर्म से राष्ट्र के हित में नहीं होती और वह स्वार्थ में रहती है तो उसे प्रजातन्त्र नहीं कहना चाहिये। तो यह बहुत सुन्दर विचार है। इन सुन्दर विचारों को लाने के लिये मानव की आवश्यकता है और महान् क्रान्ति की आवश्यकता है। कल मेरे प्यारे महानन्द जी प्रकट करेंगे। आज का मुझे यह वाक्य बहुत सुन्दर प्रतीत हुआ परन्तु इससे मानववाद को बड़ा बल प्राप्त होता है। इन्होंने एक वाक्य और कहा है कि यह समाज हमारे वाक्य को स्वीकार करे या न करे परन्तु जो हमारे यथार्थ उद्‌गार हैं वह वायुमण्डल में मिश्रित होकर के भी वायुमण्डल को तो पवित्र करेंगे ही क्योंकि यदि मानव के हृदय में इतनी गिलानी आ गई है, इतनी दुर्गन्ध हो गई है कि वह अच्छाइयों को अपने में समाहित नहीं कर सकते तो वायुमण्डल तो पवित्र अवश्य ही बनेगा। यह बहुत सुन्दर विचार है। इन विचारों में एक महानता होती है तो कल मेरे प्यारे महानन्द जी इस सम्बन्ध में अपने और विचार प्रकट करेंगे। आज अब यह वाक्य समाप्त होता है। अब वेद का पाठ होगा इसके पश्चात् वाक्य समाप्त है।

यथार्थ क्रान्ति

३१ जुलाई १९६८
आर्य भवन जोर बाग, नई दिल्ली

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ वेद मंत्रों का गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया। आज का वेद पाठ मुझे बहुत प्रिय लग रहा था और हमें ऐसा प्रतीत होता चला जा रहा था जैसे परम पिता परमात्मा इस वेद वाणी के द्वारा मानव के अन्तर आत्मा को पवित्र वनाने जा रहा है और संसार का जितना ज्ञान और विज्ञान है उसकी प्रतिभा प्रदान करते चले जा रहे हैं। परन्तु उस परम पिता परमात्मा की जो प्रतीभा है वह बड़ी विचित्र मानी गई है। हमारे यहां ऋषि मुनियों का जो विचार है वह एक महान् विचार हुआ करता है जिसके द्वारा वह परम पिता परमात्मा की महिमा का गुण गान गाते हुये इस संसार सागर से उनका उपराम हो जाता है। वह उस ब्रह्म में जाने के योग्य बन जाते हैं परन्तु जब हम यह विचारते हैं कि वेद हमें क्या कहता है।

आज के हमारे प्रारम्भ के वेद मन्त्रों में उस मनोहर प्रभु की याचना की जा रही थी जो प्रभु लोक लोकान्तरों का स्वामित्व किया करता है और वह जो लोक लोकान्तर अपने २ आंगन में जो भ्रमण कर रहे हैं परन्तु उनमें जो क्रिया प्रदान करने वाला उस परम पिता परमात्मा के आंगन को चला जा

रहा है। आज हम अपने उस देव की याचना करते चले जायें। उस प्रभु का जो गर्भाशय है वह कितना विचित्र और महान् है कि उसी के गर्भ में यह सर्वंशः ब्रह्माण्ड समाहित हो रहा है जिस प्रकार माता के गर्भ स्थल में जब जरायुज होता है तो उसकी पांच ज्ञान इन्द्रियां, पांच कर्म इन्द्रियां, मन बुद्धि यह सब उस माता के गर्भस्थल में निहित होती हैं। इसी प्रकार यह जो ब्रह्माण्ड है यह उस परम पिता परमात्मा का गर्भाशय माना जाता है। यह जितने लोक लोकान्तर हैं प्राणीमात्र हैं सब उसके गर्भ में भ्रमण कर रहे हैं। अपने अपने आंगन में वह क्रिया करते चले जा रहे हैं। एक महानता को लाने में वह सदैव तत्पर रहते हैं। आज हम अपने उस प्यारे देव की याचना करते चले जायें जिस देव के द्वारा यह संसार उपलब्ध है। यह संसार हमें चित्रमय प्रतीत हो रहा है, यह सब उस मेरे देव से करुणा की आवश्यकता है। वह जो विश्वकर्म्मा है वह कितना महान् है। उसके हृदय की जो विशालता है वह कितनी महान् है जिस विशालता के लिये मानव सदैव अपने जीवन में प्रयत्नशील रहता है परन्तु जब हम प्रभु और मानवता के सम्बन्ध में विचारविनिमय करते हैं उसके ज्ञान विज्ञान के सम्बन्ध में तो मानव 'चित्राः अस्ति ग्रीहः" मानव मौन हो जाता है, शान्त हो जाता है परन्तु जब हम यह विचारने लगते हैं कि प्रभु का गर्भाशय कितना विचित्र है, नाना प्रकार की वनस्पतियां हैं उत्पन्न वह होकरके मानव के जीवन का संचार करती रहती हैं। मैं कोई अधिक चर्चा प्रकट करने नहीं आया केवल यह कि प्रत्येक मानव प्रत्येक देवकन्या को उस अपने प्यारे प्रभु की महिमा में सदैव संलग्न रहना चाहिये जो चैतन्य देव है उसकी चैतन्यता इस प्रकृति के कण कण में व्याप्त हो

गई हैं हम इस देव की याचना करते चले जायें। प्रथम वेद मन्त्र हमें यही नाद दे रहा है। हे मानव! तू वास्तव में ऊंचा बन। अब मैं अपने प्यारे महानन्द जी से उच्चारण करूंगा कि अब वह अपने कुछ उदार वाक्य प्रकट करें कटुता को त्याग करके।

ओं सर्वांग मम हृदयश्चत प्राणी मम वेताः हृदयं भवाक्तम् देवम् मयाः।

मेरे पूज्य गुरुदेव अथवा ऋषिमण्डल, भद्र समाज! मुझे उस परम पिता परमात्मा की अनुपम महिमामय, पूज्य गुरुदेव की अनुपम दया से यह अमूल्य समय पुनः प्रदान किया। यह समय एक बड़ा महान् रहता है। जब मानव व्याख्यानदाता हो अथवा उसका अनुमोदन करने वाला हो परन्तु उसकी विचारधाराएं उस परांगन में भ्रमण नहीं करती हैं जहां उसे जाना होता है। आज मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने उसका रूपान्तर कर दिया जहां मुझे नहीं जाना है वहां पहुँचाने का प्रयास रहता है कैसा इनका हृदय, बहुत ही उदार। इसी उदारता का परिणाम सुन्दरतम होता है परन्तु प्रारम्भ में उसमें कष्ट प्रतीत होता है। तो आज मैं कोई विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। कल के वाक्यों में हमने प्रकट कराया था कि आज का जो मानव है, आज का जो राष्ट्रवाद है वह दो विचारधाराओं में विभाजित हो रहा है परन्तु मानव की यह दो विचारधारा परम्परा से चली आ रही है। इन विचारधाराओं में ऐसी कोई सूक्ष्म नहीं है परन्तु आज विचारविनिमय में यह करना है कि मानव यह चाहता है कि मैं गृह में, अपने राष्ट्र में वास्तविकता को लाना चाहता हूँ। प्रत्येक मानव के हृदय में यह चिन्तन लगा रहता है कि यथार्थ क्रान्ति को लाना

है परन्तु विचार नहीं आ रहा है कि यथार्थं क्रान्ति क्या होती है।

आज प्रायः मानव नाना प्रकार के यन्त्रों के द्वारा अपने मस्तिष्क को क्रान्ति में ले जाता है, कहीं वह चन्द्रमा के ऊपर विचारविनिमय करने लगता हैं तो वहां उसके विचारों में कुछ होने लगता है उसीमें वह यथार्थं क्रान्ति को लाना चाहते हैं। आज कोई मानव यह उच्चारण करने से मैं चन्द्रमा में जाने वाले यन्त्रों निरधारन करने से मैं यथार्थ शान्ति को प्राप्त हो जाऊंगा या यथार्थ क्रांति कर सकूंगा मैं परमाणुवाद के साथ। यह मानव के लिये कोई सुन्दर नहीं है। यह वास्तव में असम्भव है। कहीं कहीं हमारे यहां संस्कृताचार्यों ने कहा है 'अनुभवत्राय अग्रति मानवा चक्रति सुद्राः' आज मानव उसी चक्र के द्वारा रमण करता रहता है, जीवन में एक महानता की ज्योति को लाने का प्रयास करता रहता है। इसी ज्योति के साथ साथ जब यह विचार आ जाता है कि यथार्थं क्रान्ति को लाना है तो मानव को सबसे प्रथम मानव को आत्मविश्वासी बनना है। आत्म विश्वासी व्यक्ति वह होता जो प्रभु का प्यारा होता है। आज आत्मविश्वास उसके द्वारा होता है जो त्याग और तपस्या में परिणत रहता है। आज वह यथार्थं क्रान्ति को विचारविनिमय करने वाला वह अपने जीवन में यह विचार लेता है कि एक समय वह आयेगा कि तू नहीं रहेगा परन्तु तेरी जो महान् क्रान्ति है यह सदैव संसार में ज्योति बन करके रहे।

आज जब हम विचारविनिमय करते हैं कि कौन कौन ज्योति कितनी महान् है, ज्योति पर मानव अनुसन्धान करने लगता है, मैं भी किया करता हूं, राजा और अधिराज भी किया

करते हैं और करना चाहिये, इसी में मानव की मानवता और विचित्रतावाद विराजमान हो जाता है। इसको धारण करने के पश्चात् महानता में मानव का जीवन परिणत हो जाता है।

यथार्थ क्रान्ति क्या होती है? मुझे स्मरण आने लगता है। मेरे पूज्य पाद गुरु देव ने तो वर्णन कराया ही है परन्तु मुझे भी स्मरण है कि एक समय मुझे देव ऋषि नारद की सभा में जाने का सौभाग्य मिला। देव ऋषि नारद, महर्षि शोनक, महर्षि पिप्पलाद, महर्षि दालभ्य इत्यादि ऋषिवर विराजमान थे। उनका विचारविनिमय चल रहा था, यथार्थ क्रान्ति को श्रवण करने के लिये मृगराज आ गये, नाना प्राणी आ गये। विचारा कि यह क्या है तो विचार आया कि यथार्थ क्रान्ति वही होती है जहां हिंसक प्राणियों को भी, हिंसक व्यक्तियों को भी "अहिंसा परमोधर्म" का पालन करने में बाध्य कर देती है। परन्तु जो संसार में यथार्थ क्रान्ति की घोषणा करता है, नाद देता है परन्तु वह हिंसक प्राणियों को अहिंसा में परिवर्त्तन नहीं कर सकता तो संसार में यथार्थ क्रान्ति नहीं ला सकता। इसीलिये मुझे तो स्मरण आता रहता है मैं आधुनिक काल के प्राणियों का चित्रण करता रहता हूं कहीं राष्ट्रवाद में जाता हूं, राष्ट्रवाद के प्राणियों को दृष्टिपात करता हूँ वह क्रान्ति लाना चाहते हैं। कैसी क्रान्ति लाना चाहते हैं? आज क्रान्ति से ही राष्ट्र और समाज ऊंचा नहीं बना करता है, जिस क्रान्ति को आज मानव लाना चहता है, आज की क्रान्ति किस प्रकार की है? मैं आधुनिक काल की क्रान्ति को लाना चाहता हूं कि जब अपनी लोलुपता का समय आता है उस समय प्राणी क्रान्ति लाने का

प्रयास करता है परन्तु वह क्रान्ति स्वार्थ में लदी होती है, वह क्रान्ति नहीं होती वह हिंसक क्रान्ति होती है जो मानव का भक्षण कर जाती है। इसीलिये हे मानव! तेरे लिये यह क्रान्ति सुन्दर नहीं है, क्रान्ति वह होती है जहां आत्म विश्वास होता, आत्मा की चुनौती देता रहता है, उन्हीं कार्यों में संलग्न रहता है, उस क्रान्ति को लाने वाला जो प्राणी होता है वह सबसे प्रथम अपने मन की तरंगों को, अपनी ज्ञान इन्द्रियों, कर्म इन्द्रियों को अपने वेग में लगाने का नाम यथार्थ क्रान्ति कही जाती है।

हे मानव! आज संसार में वही यथार्थक्रान्ति-वेत्ता बन सकता है जो मानव अपनी ज्ञान इन्द्रियां, कर्म इन्द्रियों को वस में करने वाला होता है। मन को अपने आधीन बना लेता है। वह प्राणी मन वचन और कर्म से क्रांति में ही रहना चाहता वह कहता है कि आज किसी को कष्ट होता है तो वह मेरा ही कष्ट है, वह मेरे लिये ही कष्ट हो रहा है। जब यह व्यापक विचार-धारा मानव के द्वार से चली जाती है तो यदि यह संसार, यह समाज यथार्थ कान्ति को लाने की घोषणा करता है तो यह केवल एक प्रकार का दम्भ छल और पाखण्ड कहलाया जाता है। आधुनिक व्यक्तियों की मुझे कुछ चर्चायें स्मरण आती रहती हैं। आज मैं प्रशंसा तो करने नहीं आया हूं, जब मानव यथार्थ क्रान्ति को ले करके चलता है तो उसके जो हृदय के उद्गार होते हैं वह इस प्रकार के होते हैं। मुझे महाराजा शंकराचार्य का जीवन स्मरण है। उनके हृदय में क्या विचार धारा आई कि आज में वैदिकता को ऊंचा बनाना चाहता हूं, मैं वेदान्त को ले करके चलना चाहता हूं, आज मैं प्रभु की छत्र छाया में रहना चहाता हूँ। संसार के नाना

प्रकार के प्रलोभन उस व्यक्ति के द्वारा आते हैं परन्तु वह व्यक्ति उन प्रलोभनों को नष्ट कर देता है। नाना ग्रहियों ने नाना जैन समाज ने उन्हें नाना प्रलोभन उस समय दिये परन्तु उस महान् क्रान्तिकारी ने यह कहा कि मैं प्रभु के राष्ट्र में हूँ, मैं अपने उस महान् कार्य के लिये आया हूं जिस कार्य को करने के पश्चात् मुझे एक महान् राष्ट्र की प्राप्ति हो जायेगी, मैं द्रव्य नहीं चाहता, मैं संसार का प्रलोभन नहीं चाहता, लोलुपता नहीं चाहता परन्तु मैं यथार्थवाद को लाना चहाता हूँ।

उसके पश्चात् यहां महात्मा ईसा का जीवन मुझे स्मरण आता रहता है। महात्मा ईसा को यहूदी नष्ट करने लगे परन्तु उन्होंने मृत्यु के मुख में जाते हुये कहा कि मुझे नष्ट कर सकते हो परन्तु मेरी यथार्थ क्रान्ति आत्म विश्वास है इसे छेदन नहीं कर सकते। इस प्रकार जो मानव महान् होते हैं उनके हृदयों में जो उद्गार होते हैं उनको कोई मानव छेदन नहीं कर सकता है।

महात्मा दयानन्द का जीवन मुझे स्मरण है। उनके अन्तर आत्मा का जो विश्वास था वह जब मुझे स्मरण आने लगता है तो हृदय में व्याकुलता होने लगती है और कहा करता हूं कि उनकी महानता कितनी विचित्र थी। नाना प्रलोभनों के पश्चात् भी यह कहा कि मैं ऐसे राष्ट्र पिता के राष्ट्र में हूँ जहां मुझे प्रलोभन व्याप नहीं सकता क्योंकि प्रलोभन उनको व्यापता है जो प्रभु को अपने से दूर कर देता है। आज वही व्यक्ति महान् बना करता है जो प्रभु का विश्वासी होता है, प्रभु की जिसमें वेदना होती है। आज जब मुझे उस महापुरुष का जीवन स्मरण आने लगता है। उनकी विचार धारा,

उनका ब्रह्मचर्य, उनका तप स्मरण आने लगता है तो हृदय में गद्गद होने लगताहूँ और मुझे यह प्रतीत होने लगता है कि वह महापुरुष कैसा महान् था कि उसने उस यथार्थ क्रांति को लाने का प्रयास किया और उस यथार्थ क्रांति का यह परिणाम हुआ कि यह राष्ट्र जो दूसरे राष्ट्रों से नीचे दबायमान था वह यहाँ से प्रस्थान कर गये। यह होता है यथार्थ महापुरुषों की क्रान्ति का परिणाम।

आज कोई यथार्थ क्रान्ति को लाना चाहता है तो उसे सबसे प्रथम अपने अपने मानसिक विचार को विचार विनिमय करना होगा, मन को वशीभूत करना होगा, आत्म विश्वास में लाना होगा। जब तक हमें आत्म विश्वास नहीं होगा हम यथार्थ क्रान्ति की घोषणा करते रहे तो यह हमारे लिये शोभा की चर्चा नहीं। परन्तु मुझे स्मरण आता है। और भी महान् क्रान्तिवादी हुये जिनका हृदय उदार महानता में परिणित होता रहा। आज का जो राष्ट्रवाद है, आज का जो प्राणी कान्ति लाना चहाता है आज का प्राणी ऐसी क्रान्ति लाना चहाता है कि रामराम मुखारविन्द में है परन्तु वह जो द्रव्य है वह मुझे दे दो। ओं ओं की क्रान्ति लाना चहाता है और द्रव्य मेरे आंगन में दे दो तो यह कोई क्रान्ति नहीं होती। यह तो एक प्रकार से दम्भ छल कपट और आडम्बर कहा जाता है। इसी को हमारे ऋषि मुनियों ने महापुरुषों ने ने पाखण्ड कहा है। आज पाखण्ड की चर्चा होती रहती है। आज मानव कोई किसी को पाखण्ड उच्चारण करता है कोई किसी को परन्तु पाखण्डी कौन होता है ? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो कई काल में वर्णन कराया, है परन्तु मैं भी उच्चारण करता चला जाऊं। सबसे प्रथम तो घोषणा यह है कि मैं दयानन्द

मानने वाला हूँ, ऋषि के पद चिह्नों पर चलने वाला हूं, कोई कहता है कि राम को स्वीकार करता हूं कोई कृष्ण को परन्तु यहां क्या है ? यह घोषणा ही घोषणा है। जब उनके हृदयों में पहुंचा जाता है तो यहां ऐसा प्रतीत होता है कि द्रव्य की लोलुपता में न दयानन्द का मानने वाला है, न शंकर का न राम का और न कृष्ण का। सब दूर चले जाते हैं। वह केवल वहीं तक है जहां तक उनकी व्याख्यान की पद लोलुपता की महानता चलते रहते है। मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इतना समय नहीं दिया है जो मैं इनकी व्याख्या विशालता में प्रकट करता रहूँ। केवल मैं यह उच्चारण करना चाहता हूं कि भगवान् कृष्ण का मुझे जीवन स्मरण आता रहता है उनके जीवन में कितनी महान् कठिनाइयां आईं आज का मानव उनके विषय में क्या क्या उच्चारण करता है परन्तु उन्होंने जीवन में कोई पाप कर्म नहीं किया। वह इतने महान् थे। उनका जीवन ऐसा रहा जैसे सुगण्ध। वही तो महापुरुष होते हैं यथार्थ क्रान्तिवादी होते हैं। उनके जीवन में महान् क्रान्ति होती है और यथार्थ क्रान्ति ला करके समाज को ऊंचा बना देते हैं।

यह तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव उच्चारण करेंगे कि यह क्या उच्चारण करने लगे परन्तु मुझे तो बड़ा आश्चर्य होता है कि आज प्रायः हम अपने को आर्य उच्चारण कर देते हैं यह आर्यसमाज है—यह आर्यसमाज है—आर्य यह संसार है—प्रभु का जितना यह मण्डल है यह समस्त आर्य कहलाता है क्योंकि जो अच्छाइयों को ला देता है वह आर्य होता है। परन्तु यहां आर्यों की घोषणा करते हैं, आर्य कौन है ? आर्ष वही होता है जो प्रभु का अटूट विश्वासी होता है, जो प्रभु के आँगन में

रमण करता रहता है, यथार्थ क्रान्ति को लाने का प्रयास करता रहता है। यथार्थ क्रान्तिवाला व्यक्ति वही होता है जो अपनी विचारधारा को उस प्रभु को अर्पित कर देता है और आत्म विश्वासी हो करके चलता है, अग्नि की भांति अग्निण्य बन जाता है। जैसे अग्निप्रकाश देती है इसी प्रकार वह प्राणी आगे आगे रमण करता रहता है और यह समाज उनके पद चिह्नों पर चलने वाला बन जाता है।

मुझे आज यह उच्चारण करनां है कि ब्राह्मण'ब्रह्म अस्ति' जो आज अपने को आर्य कहते हैं उनका कार्य यह था कि राष्ट्र में एक महान् क्रान्ति को लाने को इनको प्रयत्न रहना चाहिये था, इनका एक समाज होता, भिन्न समाज बन करके वह इतने महान् आत्म विश्वासी और तपे व्यक्ति होने चाहिये कि जो आज उच्चारण करें, जो योजना बनायें वह राष्ट्र के लिये, राजा के लिये,प्रजा के लिये महान् हो और राजा उसको मानने के लिये कटिबद्ध हो जाये, उसको वाक्य स्वीकार करना अनिवार्य हो जाता है। जब इस प्रकार का समाज होता है महान् क्रान्ति के लिये तो वह राष्ट्र और समाज दोनों ऊंचे होते हैं। मुझे स्मरण आता रहता है कि यहां प्रायः प्राणी गऊ की घोषणा करता रहता है। वह उच्चारण करता है कि गऊ पशु की रक्षा हो। अरे मानव ! आज तू इस क्रान्ति को लाने के लिये अपनी गऊ रूपी इन्द्रियों की रक्षा तो कर ले। जब तक गऊ रूपी इन्द्रियों की रक्षा नहीं होगी इस गऊरूपी पशु की भी रक्षा नहीं हो सकती क्योंकि आज हम गऊ रूपी इन्द्रियों में इतने संलग्न हो गये हैं। आज के इस राष्ट्रवाद में क्या आज के इस समाजवाद में क्या इतना महान् घृष्टता वाला समाज बन गया है कि आज संसार में

जब मेरी प्यारी भोजाई, मेरी प्यारी माता एक राष्ट्र के इस आंगन से लेकर उस आंगन तक नहीं जा सकती तो क्या इसको राष्ट्र उच्चारण कर सकेंगे। इसको क्या कहेंगे? मानो मेरी एक पुत्री अपने गृह से दूसरे आँगन में नहीं जा सकती तो यह क्या है? यह राष्ट्रवाद है, मानववाद है, यथार्थ क्रान्तिवाद है, इसको हम क्या उच्चारण कर सकते हैं। इसको केवल यही उच्चारण करेंगे कि यह धीमी-धीमी अग्नि ससार में प्रदीप्त हो रही है। धीमी-धीमी अग्नि है जो मेरी प्यारी माता और पुत्रियों के गर्भ में प्रदीप्त होने जा रही है, वह समाज में आने वाली है और वह अग्नि इस संसार को भीस्म भूत बनाती चली जायेगी। यही तो समाज है यही तो विचारों का विश्व है। मैं अपने पूज्य गुरुदेव से उच्चारण करूँगा कि विचारों के ब्रह्माण्ड की चर्चा करें। वास्तव में वह कल उच्चारण करेंगे। आज मुझे केवल यह उच्चारण करना है। आज के राष्ट्रवादियों से मैं यह जानना चाहता हूं, आज के मानववाद से मैं यह जानना चाहता हूं, आज के क्रान्तिवादियों से मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम क्रान्ति वहीं तक करते हो जहां तक तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध होता है, वहीं तक तुम्हारे आन्दोलन चला करते हैं। इन अन्दोलनों का क्या बनेगा। यह आन्दोलन वह आन्दोलन हैं जिन्होंने इस राष्ट्र को पराधीन बना दिया था। आज भी परन्तु ऐसा तो नहीं होगा परन्तु हो या न हो परन्तु ऐसा तो नहीं होगा, एक महान् क्रान्ति आने वाली है कि जब एक मानव दूसरे मानव के रक्त का पिपासु बन जाये। क्या इसको आज हम क्रान्ति उच्चारण कर सकेंगे? आज कोई मानव अपने को यवन उच्चारण कर रहा है तो कोई हिन्दुत्व की घोषणा करता है, कोई आर्य की घोषणा करता है। अरे

मानव ! जब तक तुम अपनी इन्द्रियों और अपने गौरव के पशु को ऊंचानहीं बनाओगे तबतक तुम्हारा राष्ट्र और तुम्हारी मानवता ऊंची नहीं बनेगी। मानवता को ऊंचा बनाना प्रथम है, दूसरों की रक्षा करना तो रक्षा तो स्वतः होती चली जायेगी। आज चिन्ता क्यों करते हो। इसकी चिन्ता न करो, चिन्ता यह करो कि संसार में हमें कुछ बनना है। हम नहीं बनेंगे तो आज हम दूसरों को बना ही नहीं सकेंगे।

मुझे स्मरण आता रहता है कि जिन राष्ट्रों के लिये आज का यह राष्ट्रवाद चिन्तित हो रहा हैं. आज का यह पद लोलुपता वाला व्यक्ति चिन्तित हो रहा है। मुझे वह समय भी स्मरण है जब महाभारत के काल में यह आज्ञा के अनुसार आने के लिये तत्पर हो जाते थे। आज्ञा पाई और आज्ञा से किसी भी काल में घृत कार्य किया परन्तु आज वही इतनी घृष्टता में चले गये।

जब महाराजा युधिष्ठिरने इसी इन्द्रप्रस्थमें सर्वंश यज्ञ किया था तो यहां सर्वंश राजा आ पहुंचे थे और उन राजाओं ने अर्जुन भीम और भगवान् कृष्ण की आज्ञा से देखो सर्वंश कार्य किया था आज वही राष्ट्र तुम्हें एक नौका जैसा बना रहे हैं कभी तुम्हारी नौका को डूबोने के तुल्य कर देते हैं और किसी काल में ऊंचा बना देते हैं। क्योंकि यह न स्वयं आत्मविश्वासी हो सकते हैं, किसी काल में हुये हैं और न तुम्हें ही किसी काल में सन्तुष्ट कर सकते हैं आज प्रत्येक प्राणी को विचारना है और अपनी महानता को स्वयं ऊंचा बनाना है। यथार्थ क्रान्ति को लाने के लिये तत्पर होना है।

आज के राष्ट्रवाद को द्रव्य चाहिये मानवता नहीं चाहिये। जब मानवता नहीं रहेगी तो द्रव्य का बनेगा क्या। इस द्रव्य

का कुछ नहीं वन सकता। आज मेरी प्यारी माता के द्वारा सुन्दर सुन्दर आभूषण हैं परन्तु उसके द्वारा चरित्र नहीं है तो उसके भूषणों का क्या बनेगा। राष्ट्र में यदि पद है और द्रव्य है परन्तु उसका चरित्र नहीं है तो राष्ट्र का क्या बनेगा। राष्ट्र किस लिये होता है ? राष्ट्र महानता लाने के लिये होता है ? यदि राष्ट्र में महानता को नष्ट किया गया तो वह राष्ट्र नहीं एक समय श्मशान भूमि वन करके रहेगी। मुझे स्मरण आता रहता है जब यहां महानता को और व्यक्तित्व को नष्ट किया जाता रहा है तभी देखो मानव अपने पन की परिधियों में रमण करता हुआ मानो अपनेपन को नष्ट करता चला जाता है। जब मानव अपनेपन को नष्ट करता चला जाता है, आत्म विश्वास नहीं रहता तो वह उस क्रान्ति को भी नहीं ला सकता। तो इसलिये हे मानव ! आज यदि तुम्हें यथार्थ क्रान्ति को लाना है तो सबसे प्रथम आत्मविश्वासी बनो। आत्म-विश्वासी जो प्राणी होता है उसके उच्चारण करते ही समाज में एक महान् क्रान्ति आ जाती है। साधारण व्यक्ति भी उसके प्रभाव में आ जाता है। मुझे स्मरण है जब ऋषि दयानन्द अपने एक आंगन में विराजमान हो करके किसी वाक्य की घोषणा करते थे, वह कहते थे यह मूर्ति पूजा नहीं होनी चाहिए यह इस राष्ट्र को इस समाज को नीचे ले जायेगी तो उसका वाक्य ऐसा कार्य करता जैसा त्रेता काल में राम का वाण रावण की सेना में कार्य करता था। इसी प्रकार वह कार्य करता चला जाता था। आज कहां है वह क्रान्ति ? आज के मानव को उच्चारण कुछ करना है परन्तु उच्चारण कुछ करने लगता है तो उनका प्रभाव उनकी यौगिकता सब नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है विचारधारा नहीं रह पाती। विचारता में

मानव को परिणत होना है। मैं इसका विरोधी नहीं हूं, इसका मुझे कोई समर्थन नहीं करना है परन्तु मैं एक वाक्य उच्चारण कर रहा हूँ कि आज जिसको यहां राष्ट्र पिता कहा जाता है उन्होंने कुछ-कुछ अहिंसा को जाना, वह जो घोषणा करते थे तो राष्ट्र में एक क्रान्ति आ जाती थी, उसी क्रान्ति का परिणाम कि जो द्वितीय राष्ट्र के पराधीन थे उन्हें स्वतन्त्र बना दिया। यही होती है यथार्थ क्रान्ति। यह कैसे आती है ? यह जब आती है तब आत्म विश्वास होता है। आज राष्ट्र की कुछ ऐसी क्रान्तियां होती रहती हैं कहीं गऊ के सम्बन्ध में हैं तो कहीं किसी वाक्य को मनाने के लिये क्रान्ति की जा रही हैं। अरे मानव ! तुम स्वयं तो उस वाक्य को विचार लो जो तुम क्रान्ति करने जा रहे हो, जो तुम आन्दोलन करने जा रहे हो उसका उद्देश्य क्या होगा, उसका परिणाम क्या होगा, तुम्हारा हृदय इतना विशाल भी है कि यदि कोई राष्ट्र वेत्ता तुम्हारे प्राण भी लेने लगे तो प्राणों को दे सकते हो अथवा नहीं दे सकते या पद की लोलुपता तो नहीं है। यदि इस प्रकार की विचार धारा नहीं रहेगी तो वह मानव इस राष्ट्र में यथार्थ क्रान्ति ला सकता है परन्तु उस क्रान्ति के लिये आत्म-बल की आवश्यकता है, प्रभु विश्वास की आवश्यकता है। अब तक बेटा ! किसी भी राष्ट्र में कोई महान् क्रान्ति बिना प्रभु के नहीं आती। जब तक उसे प्रभु का विश्वास नहीं होता, अपने आत्मा का विश्वास नहीं होता तब तक वह यथार्थ क्रान्ति ला ही नहीं सकता।

मैं अधिक चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ केवल यह वाक्य उच्चारण करने अवश्य आया हूँ कि आज के मानववाद को आज के राष्ट्रवाद को यथार्थ क्रान्ति लाने के लिये आत्म-

विश्वासी बनना होगा, आत्मा इतनी बलिष्ट होनी चाहिये जिससे उनके हृदय के जो उद्गार हैं, वाक्य हैं वह ऐसा कार्य करते चले जायें जैसे महाभारत के संग्राम में अर्जुन के बाण कार्य किया करते थे। इसी प्रकार आज हम अपने जीवन को, अपनी मानवीयता को विचार करके अपने को ऊंचा बनावें। तभी हम दूसरों की रक्षा कर सकते हैं।

आज जब गऊ के मांस को भक्षण किया जाता है तो मानव उसमें स्वादिष्ट होता है, अपनी रसना के आनन्द को मनाने लगता है यदि उस मानव के मांस को कोई भक्षण करने लगे तो कितना कष्ट होता है। अरे प्राणियो! जब तुम्हें कष्ट होता है तो जिसके मांस को स्वयं भक्षण करते हो उसे कष्ट नहीं हुआ होगा? क्या उसमें उसकी वेदना विराज-मान नहीं है जो तुम्हारी बुद्धि को नष्ट करती चली जाती है? क्या कभी तुम यह विचारते हो? नहीं विचारा जाता। धर्म के आंगन में जाने का एक मार्ग है। जिसको जाना है, जिसको ऊंचा बनना है वह इन वाक्यों को विचार लेता है। आज का मानव यह कहता है कि अरे! यह क्या वाक्य उच्चारण कर रहे हो, यह पाखण्ड के वाक्य हैं, इन वाक्यों को कौन स्वीकार करता है। अरे! यदि मांस पान नहीं किया जाये तो आज अन्न की कैसे पूर्ति हो सकेगी। परन्तु मैं यह कहा करता हूं कि-जब यहां मांस भक्षण नहीं किया जाता था तो क्या यह सब समाज अन्न से पीड़ित रहता था। द्वितीय वाक्य यह है कि यह जो प्रकृति है यह ऐसी मां है कि इसके गर्भ में जब तुम आते हो और जो इस माता से, कल्पना करते हो वही देती है। आज तुम मांस मांगने लगे, मांस की तुम्हें चिन्ता रहने लगी तो वही देने लगी। इस प्रकृति मां से तुम कहो

कि अन्न दे, दुग्ध दे तो वही देती चली जायेगी। यह ऐसी भोली मां है कि इसकी लोरियों में जो कहकर पुकारोगे वही देती चली जायेगी। यदि आज तुम अन्न को स्वीकार नहीं करोगे तो यह तुम्हें अन्न दे ही नहीं सकती। जब अन्न नहीं देगी तो तुम जो इच्छा करोगे वह पान करते चले जाओगे। वास्तव में जो पदार्थ पान किया जाता है वह सभी पदार्थ अन्न है परन्तु विचारविनिमय में यह करना है कि मांस को अन्न नहीं उच्चारण करना क्योंकि यह उनके लिये अन्न हो सकता है जो मांस भक्षण करने वाले प्राणी होते हैं, मानव का भोजन नहीं है, यह मानव का अन्न नहीं है। मानव का अन्न वनस्पतियां होती हैं। यह उनका भोजन है जो हिंसक होते हैं। मैं तो अब तक यह जाना हूँ कि आज का जो समाज है वह यथार्थ क्रान्ति को इसीलिये नही ला पा रहा है क्योंकि इसके आहार और व्यवहार दोनों नष्ट हो गये हैं, इसमें यथार्थवाद नहीं रहा। यह जैसे आहार को करता है वैसी मन की प्रकृतियां बन गईं, जैसी मन की प्रकृतियाँ वैसी ही वाक्य के शब्द की रचना हो गई और जैसी इस शब्द की रचना है वैसा ही वायु मण्डल हो गया और जैसा वायु मण्डल हो गया वैसा ही यह समाज बनता चला जा रहा है। कल मैं अपने पूज्य पाद गुरुदेव से प्रार्थना करूंगा कि यह अन्तरिक्ष के सम्वन्ध में व्याख्या करें। आज तो मैं केवल यह उच्चारण करने चला कि यथार्थ क्रान्ति कैसे आ सकती है। आहार और व्यवहार दोनों को ऊंचा बनाया जाये, इस पर चिन्तन किया जाये और जब विचार धाराएं पवित्र होती हैं, महानता में लाने के लिये सदैव तत्पर रहता है और आत्म विश्वास होता है, प्रभु उसके आंगन में होता है और छल कपट से दूर होता

है, वह प्राणी संसार में राष्ट्र में यथार्थ क्रान्ति को लाने वाला बनता है। अब मैं अपने वाक्य को समाप्त करने जा रहा हूँ।

मुझे तो बड़ा आश्चर्य आता है जब मैं दयानन्द, शंकर के पुजारियों के द्वारा जाता हूं। घोषणा कुछ है और उच्चारण कुछ है कार्य कुछ हो रहा है। यह सब कुछ क्या है? यह समय का और उनके आहार और व्यवहारों की ही महिमा है। जब मैं और भी महापुरुषों की चर्चा स्मरण करता हूं तो हृदय गद्गद होने लगता है परन्तु यहां सब कुछ क्या हो रहा है कुछ नहीं कहा जा सकता। इसका परिणाम तो यह समय आगे उच्चारण करेगा, समय आगे तुम्हें निर्णय देगा। जो तुम कर रहे हो उसका समय निर्णय देगा। मानव निर्णय नहीं देता, हम भी निर्णय नहीं देते, न पूज्यपाद गुरुदेव ही निर्णय दे सकेंगे। क्यों दें यह तो आगे तुम्हारा समय निर्णय देगा। समय स्वयं कहेगा कि यह हो रहा है। धीमी-धीमी अग्नि चल रही है और समय निकट आ रहा है जब मानव की अग्नि ही मानव को निगल जायेगी। मानव का पाप मानव को निगल जायेगा। यह उच्चारण करने का समय नहीं। मुझे तो स्मरण आता रहता है। यहां एक नहीं नाना प्राणियों को हनन कर जाता है। आज कोई मानव उच्चारण करे कि यह क्या उच्चारण? उनके मनों में आता है कि यह क्या है। क्योंकि उनका हृदय ही ऐसा नहीं जो इन वाक्यों को अपने हृदय में धारण कर सकें। क्योंकि उनका हृदय ऐसे अन्न और ऐसे आहार व्यवहारों से परिपक्व हो गया है कि यह केवल उनके मनों तक ही रहती है सूक्ष्म तक वाणी तक और क्रियात्मक में नहीं आती। मैं यह नहीं उच्चारण करता कि यह संसार हमारे वाक्यों को क्रियात्मक करें। अन्त में लाना तो

पड़ेगा। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को एक वाक्य कहा था कि हे अर्जुन ! यह संसार एक समय मेरे शरण आ ही जायेगा। एक समय वह समय भी आता है जब प्राणी मात्र प्रभु के द्वार पर चला ही जाता है और जाना होगा। परन्तु यह सूक्ष्म समय का आनन्द है भोगा ही जायेगा भोग रहे हैं अन्त में उसमें कष्ट होगा। इसीलिये मानव को चैतन्य हो जाना चाहिये। मानव चेतनता के लिये आता है। यहां द्रव्य एकत्रित करो, उसको प्रसारण करो, उसको महान् कार्यों में लगाते चले जाओ, उसका दुरुपयोग न करो। समाज में, राष्ट्र में कोई ऐसा कार्य नहीं होना चाहिये जिससे मानव का चरित्र भ्रष्ट हो जाये। अब राष्ट्र में ऐसे कार्य हो रहे हैं, होते चले जा रहे हैं। ब्राह्मण नहीं रहा, तपस्वी त्यागी नहीं रहे, यहां शंकर नहीं रहा, मूल नहीं रहा जो राजा को उच्चारण करता कि तू इस प्रकार की योजना बना। याज्ञवल्क्य भी नहीं आये जिनकी आज्ञाओं के अनुसार राष्ट्र के चुनाव होते परन्तु आज क्या है ? आज तो मन माना कार्य हो रहा है जहां मनमाना कार्य हुआ वहां मानव में भ्रष्टाचार आ जाता है। इसीलिये यहां त्यागी और तपस्वी की आवश्यकताहै। यहां व्याख्याताओं की आवश्यकता नहीं, क्रियात्मकवादियों की आवश्यकता है। यहां केवल दयानन्द के नाम को उच्चारण करने की आवश्यकता नहीं, उसके कार्य करने की आवश्यकता है। यहां कृष्ण और शंकराचार्य के नाम को उच्चारण करने की आवश्यकता नहीं परन्तु उनके जो कार्य हैं उनके अनुसार हमें कार्य करना है। क्रान्ति को लाना है, महानता को लाना है तो आत्मविश्वासी बन जाओ, महानता में आ जाओ जिससे तुम्हारा जीवन ऊंचा बन जाये और तुम यथार्थ क्रान्ति को ला

सको तो लाओ। लाना चाहिये और आयेगी। ऐसा नहीं कि नहीं आयेगी। आयेगी अवश्य। अब मैं अपने वाक्यों को समाप्त कर रहा हूं। अपने पूज्य गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा कि मुझसे बहुत सी कटुता हो ही जाती हैं क्योंकि यथार्थवादियों से कटुता हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। अब मैं अपने पूज्य गुरुदेव से आज्ञा चाहूंगा।

धन्य हो!

मेरे प्यारे ऋषि मण्डल! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने कुछ शब्द उच्चारण किये। महान् क्रान्ति को लाने के जो शब्द हैं उसमें कुछ अधूरापन रह गया। यह विचारना है कि आत्म-विश्वासी मानव को होना चाहिये परन्तु उससे पूर्व यहां सभी कुछ ऊंचा होना चाहिये। महान् क्रान्ति को लाने के लिये सबसे प्रथम प्रभु के विश्वास की आवश्यकता है। प्रभु विश्वास से द्वितीय आत्म विश्वास है। तो आत्मा का जब बल प्रथम हो जाता है, शक्ति प्रदान की जाती है तो यथार्थ क्रान्ति स्वतः आने लगती है। उस यथार्थ क्रान्ति से राष्ट्र ऊंचा बन जाता है और जब राष्ट्र में एक महानता आ जाती है तो समाज शनैः शनैः ऊंचा बन जाता है। रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल इस प्रकार का है इससे हमें कोई प्रयोजन नही, यह तो महानन्द जी के उद्‌गार हैं, उच्चारण करते रहते हैं। हमने प्रारम्भ के शब्दों में कहा है कि प्रभु के आंगन में जाने के लिये तत्पर हों। जितने भी यौगिक पुरुष होंगे उतना ही यह समाज ऊंचा होगा। रही यह चर्चायें कि मानव प्रदर्शन करता रहता है उन प्रदर्शनों में नाना प्रकार के अपने पद की लोलुपता इत्यादियों का कार्य होता रहता है तो इसको यथार्थ क्रान्ति तो नहीं कहा जाता इसको तो एक स्वार्थ की सिद्धि ही कहा जाता

है जिससे पद की लोलुपता पूर्ण हो जाये। इसमें भी भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार हैं वह कि पद की लोलुपता पाने के पश्चात् क्रान्ति कर सकता है। परन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि उसकी चुनौती तब ही दी जाती है जब आत्मबल होता है और यदि आत्मा में आत्मबल नहीं है तो पद की लोलुपता को भी वह भ्रष्ट कर देता है वैदिक परम्परा का कुछ ऐसा नियम है। तो इसीलिये प्रत्येक मानव को, प्रत्येक प्राणी मात्र को इन वाक्यों को सभी को विचार विनिमय में करने की आवश्यकता रहती है। रहा यह वाक्य कि आज हम महापुरुषों के आंगन को चलें, महापुरुषों के विचारों से मानव को बल प्राप्त होता है और जहापुरुषों के विचार जब आते हैं तो उनसे बल और आत्मविश्वास उपजने लगता है और एक समय वह आता है कि वह महापुरुष के द्वार चला जाता है और उसके द्वार जाता हुआ उसके कार्यों को स्वतः करने सगता है अब हमारा यह वाक्य अब समाप्त होने ही जा रहा है कल समय मिला तो जैसा मेरे महानन्द जी ने कहा है कि वायुमण्डल में कैसे विचार किन किन प्रकार के होते हैं तो इन पर विचार धारा प्रकट की जा सकेगी। अब वेद का पाठ होगा परन्तु मेरे प्यारे ऋषि जो कुछ कहा वह सुन्दर तो था परन्तु कटुता इतनी थी कि जो एक ऊंचा और महान् व्यक्ति होता है वह उसे सहन नहीं करता उनको अपने में गृह आस्तत्व और बोझा ही स्वीकार कर सकता है।

गुरुदेव! आज मेरे इन वाक्यों को बोझा ही स्वीकार कर लीजिये। वास्तव में बोझा तो नहीं। आपको प्रतीत ही ऐसा देता है। तो मुनिवरों! अब आज का यह वाक्य अब समाप्त हुआ। अब वेदों का पाठ होगा।

अन्तरिक्ष की चर्चा

१ अगस्त १९६८
आर्य भवन, जोर बाग, नई दिल्ली

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे । यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन पाठन किया । हमारे यहां परम्परा से ही वेद मन्त्रों का पठन पाठन का कर्म विचित्र और महानता में परिणत रहता है । जब हम प्रत्येक वेद मन्त्र पर विचार विनिमय करने लगते हैं तो हमें कुछ ऐसा प्रतीत होने लगता है कि प्रकृति का एक २ परमाणु उस परम पिता परमात्मा से सुगठित हो रहा है क्योंकि परमात्मा सर्वत्र होने के नाते वह प्रत्येक स्थान में दृष्टिपात आने लगता है । जब हम परमात्मा को प्रकृति के कण कण में दृष्टिपात करने लगते हैं तो हमारे जीवन में एक उल्लास, महानता के विशेष अंकुर उत्पन्न होने लगते हैं ।

प्रायः मानव संसार में योगी बनना चाहता है । सम्पन्नता चाहता है । मानव के हृदय में है कि मैं धार्मिकता में रमण कर जाऊं । किसी-किसी काल में मानव को नास्तिकवाद भी आ जाता है । इन सभी वाक्यों को जब विचारा जाता है और जब इन पर अनुसंधान करता है तो यही प्रतीत होता है कि मानव

की विचारधाराएं, जिस प्रकार का वायु मण्डल, जिस प्रकार का उसका सत्संग होता है उसी प्रकार की भिन्न-भिन्न प्रकार की विचारधाराएं मस्तिष्क में आ जाती हैं। आज हम परमात्मा की याचना करते रहते हैं। जो भी व्यक्ति आते हैं वह भी परमात्मा के उपासक आते हैं तो एक सुन्दर समय बन जाता है और मस्तिष्क में वही वाक्य प्रारम्भ होने लगते हैं और उसी के अनुसार मानवता के मस्तिक की रचना होने लगती है। जब हम इन वाक्यों को और गम्भीरता में ले जाते हैं, वैदिक साहित्य में ले जाते हैं तो उस परम पिता परमात्मा की प्रतीति होने लगती है।

कल के वाक्यों में मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक शब्द बहुत ही सुन्दर कहा था "आत्मविश्वास" कि मानव को आत्मविश्वास होना चाहिये। आत्मविश्वास क्या होता हैं ? प्रायः मानव के हृदय में यह वेदना रहती है कि मैं आत्मविश्वासी तो बनने जा रहा हूं परन्तु उसमें जो नाना प्रकार की घटनाएं होती हैं तो हम आत्म विश्वासी किस प्रकार बन सकते हैं। परन्तु बहुत पूर्व काल में मैंने इसके ऊपर टिप्पणी दी थी और टिप्पणी करते हुये कुछ ऐसा कहा था कि आत्मविश्वासी जो प्राणी होता है उसके जीवन में अन्धकार नहीं होता। उसके जीवन में सदैव प्रकाश रहता है। जो प्राणी आत्मविश्वासी होता है वह परमात्मा के क्षेत्र में प्रभु का चिन्तन करता हुआ बना करता है। आज कोई मानव यह उच्चारण करने लगे कि मैं आत्मविश्वास

को लाना चाहता हूं, मैं आत्मविश्वासी हूं परन्तु आत्मविश्वासी के जीवन में अन्धकार नहीं होता यह एक विशेष वाक्य है। यह परंगगृत ऋषि ने कहा था, पम्पेतु ने भी कहा था, शौनक इत्यादियों ने वर्णन किया कि उस मानव के हृदय में अन्धकार नहीं होता और वह अहिंसा परमो धर्मः की वेदी पर चला जाता है।

अहिंसा परमोधर्मः की मैंने कई काल में चर्चा की। आज मैं अधिक चर्चा नहीं करना चाहता केवल यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि आत्मविश्वासी ही अहिंसा परमोधर्म का पालन कर सकता है। हिंसक प्राणी ऊंचा नहीं बनता। आत्मविश्वासी अहिंसक परमोधर्म को जान जाता है वह राष्ट्रवेत्ता हो राष्ट्रीय आत्मविश्वासी हो, ब्रह्म के विषय में आत्मविश्वास हो परन्तु दोनों की तुलना एक ही मानी जाती है। परन्तु जब इन दोनों आत्मविश्वासी की सुगठितता होती है तो उसमें ऐसा प्रतीत होने लगता है आत्मविश्वासी को कि राष्ट्रीयतामें वह आत्मविश्वासी व्यक्ति जो वाक्य उच्चारण करता है उसमें इतना बल आजाता है कि उस वाक्य के बल से राष्ट्र का नेतृत्व करने वाला बन जाता है। यह नहीं कि राष्ट्र उसके वाक्य को नष्ट कर दे। राष्ट्र को वाध्य कर देता है, राजाओं को बाध्य कर देता है कि या तो उसके वाक्य को स्वीकार करो अन्यथा उसके प्राणों का हनन किया जायेगा। ऐसा वह आत्म-विश्वासी होता है कि वह राष्ट्र को उस वाक्य को स्वीकार करने के लिये बाध्य कर देता है। इसी प्रकार जो आत्म-विश्वासी प्राणी है वह हिंसक प्राणियों को बाध्य कर देता है और वह यह कहता है उन हिंसक प्राणियों से कि या तो मेरे

द्वार से चले जाओ अन्यथा मेरे यहां आना है तो अहिंसा परमोधर्मः की वेदी को अपनाते चले जाओ।

मुझे स्मरण आता रहता है कि आत्म विश्वासी प्राणी कौन होता है। मैंने कई काल में विवेचना भी की, वाक्य भी प्रकट किये। मुझे स्मरण है महर्षि भृगु जीं का आसन। महर्षि भृगु जीं के आश्रम में जब सब ऋषिजन विराजमान होते और मुझे भी सौभाग्य प्राप्त होता रहा है जब उनके आश्रम में जाते। जब वह वेद मन्त्रों का गान गाते, आत्म चिन्तन करते, आत्मा के प्रति कोई गान गाते तो हिंसक प्राणी आ जाते तो उनकी वाणी जो अहिंसा परमोधर्म से गुन्थी हुई होती है वह हिंसक प्राणी को वाध्य कर देती और वह उनके चरणों में ओत प्रोत हो जाते। इसका नाम आत्मविश्वास होता है। उस आत्म विश्वासी के हृदय में हिंसक भावना आती ही नहीं। वह अहिंसा परमोधर्म की वेदी पर इस प्रकार मग्न हो जाता है जैसे भक्त और भगवान् की मग्नता हो जाती है। इसी प्रकार जो आत्मविश्वासी प्राणी होता है उसका तारतम्य प्रभु से होता है, वह प्रभु के चरणों में सदव रहता है, उसके मन की जो प्रकृतियां हैं वह ब्रह्म में होती है वह प्रकृतियां मानव को इस प्रकार बाध्य कर देती है कि वह प्राणी पाप करना चाहता है तो वह पाप से भी वंचित हो जाता है। आत्म विश्वासियों का जो विचार है, उसके जो उद्गार हैं वह ऐसे क्यों हैं कि हिंसक प्राणियों को वाध्य कर दिया जाता है। उनके हृदय की जो वेदना है, उनके हृदय के जो उद्गार हैं. जिस आसन पर वह विराजमान होते हैं वहां का वातावरण पवित्र होता चला जाता है। भयंकर वन में चले जायें अन्यथा जब ऐसे महान् आत्मा को जव गृहस्थी अपने गृह आश्रम में प्रविष्ट कराते हैं

तो वह गृहस्थी बड़े मग्न होते हैं और उनका हृदय प्रफुल्लित हो जाता है और कहा करते हैं कि आत्मविश्वासी व्यक्ति आज अहिंसा परमोधर्म को मानने वाला महापुरुष हमारे गृह में आ गया है हमारा गृह भी इनके विचारों से, इनकी हृदय की वेदना से गृह में एक आनन्द आ गया, स्वर्ग आ गया। ऐसी एक वेदना होती है। इसीलिये हमारे यहां कहा गया है कि महापुरुषों का पूजन करो। ऐसे महापुरुषों का पूजन होना चाहिये। तन मन धन से पूजन होना चाहिये। आज मैं पूजन के सम्बन्ध में नहीं जा रहा हूं केवल यह कि जब उसकी ऐसी विचारधारा बन जाती है तो उसका वायुमण्डल भी उसी प्रकार का बन जाता है।

अब यह जो वायुमण्डल है यह इस प्रकार का बना हुआ है कि मानव के जैसे विचार होते हैं—आज का एक मानव है, आत्मविश्वासी है, अहिंसा परमोधर्म की विचारधारा है और वही अहिंसा परमोधर्म के परमाणु जो वायुमण्डल में भ्रमण कर रहे हैं वह खींचें चले आते हैं। उनमें इतना ओज और तेज हो जाता है कि वह स्वतः ही आकर्षण शक्ति के द्वारा वह ओज आकृति में विराजमान हो जाते हैं। जैसे माता के गर्भ-स्थल में जो माता महान् ब्रह्मचारिणी होती है, रोगों से विहीन होती है उस माता के गर्भ स्थल में आकर्षण शक्ति अधिक होती है। वह वीर्य के बिन्दु को बहुत शीघ्रता से गर्भस्थल में धारण कर लेती है और जब वह धारण हो जाता है तो रचना बहुत सुन्दर होती है। इसी प्रकार माता का जो गर्भाशय है वह अग्नि जल इत्यादियों की आकर्षण शक्ति से है जिसे जरायुज कहते हैं। इसी प्रकार वह जो महापुरुष होते हैं उनकी आकर्षण शक्ति से, उसके विचारों से, जहां-जहां

उसके विचारों की ज्योति जाती हैं वहाँ वहाँ का वातावरण महान् और पवित्र बनता चला जाता है। इसी प्रकार आज कोई मानव अशुद्ध वाक्य उच्चारण करता है जैसे किसी गृहस्थी के यहां कलह रहने लगता है वहां वायुमण्डल में से कलह के परमाणु आने लगते हैं और वह गृह कलह का एक क्षेत्र बन जाता है। हमारे ऋषि मुनियों ने उस गृह की नरक की कल्पना की है। जिस गृह में कलह रहता है, पति और पत्नी सन्तुष्ट नहीं रहते बालक प्रिय सन्तुष्ट नहीं रहते वहां अनाचार कार्य होते हैं तो वहां एक नारकीय क्षेत्र बन जाता हैं। इसीलिये आज किसी गृह को सुन्दर बनाना है तो गृह में ऐसे विचार होने चाहिये जहां पति पत्नी रहते हों, पुत्र पुत्रियां रहती हों, ऋषि मुनि रहते हों तो उनमें ऐसे सात्विक विचार होने चाहिये जिससे उस गृह का वायुमण्डल सात्विकता से ओत-प्रोत हो जाये। अपना उद्देश्य और कर्त्तव्य उसके साथ होना चाहिये इसी प्रकार हमारे यहां आज कोई मानव लालच में अधिक वशीभूत हो जाता है मानो वह जब लालची हो जाता है तो लालच प्रधे आस्वानी कृपण हो जाता है वही कृपण वाले परमाणु अन्त:रिक्ष में विराजमान हो जाते हैं। मानव के जीवन को केन्द्रित बनाते हुये वह परमाणु अन्तरिक्ष में से आने प्रारम्भ हो जाते हैं तो मानव कामाः ब्रह्मी लग्रणी रुद्रो कामाः मुनिवरो देखो! उसकी कामनाओं के अनुसार वही परमाणु उसके समीप आने लगते हैं।

ऋषि-मुनियों ने कहा है कि जिस भी प्रकार का प्राणी होगा आज कोई मानव कामी बनना चाहता है तो कामी हो जाता है और वही कामी प्राणी उसके समीप आने प्रारम्भ हो जाते हैं, वही कामना ही कामना उसे प्रतीत होने लगती है।

इसी प्रकार आज के मानव को क्या परम्परा से एक वाक्य चला आया है कि यदि किसी मानव को अपना उत्थान करना है, परमात्मा को जानना है तो यह जो प्रभु का विज्ञान है, यह जो प्रभु का बनाया हुआ ब्रह्माण्ड है इसको जान लो, यदि नहीं जाना जायेगा तो अन्धकार में रहेगा। मैंने बहुत पूर्व नाना प्रकार के वाक्य प्रकट किये हैं। आज कोई मानव अनाचारों से सुन्दर सुन्दर ऐश्वर्यों में आ जाता है परन्तु उसके जो अनाचार हैं वह उसके अन्तःकरण को छूते हैं, अन्तःकरण को दुखित कर देते हैं, व्याकुल हो जाता है, आत्मिक शान्ति नहीं हो पाती क्योंकि उसका जो अनाचार है वह उसको बाध्य कर रहा है, वह उसी मार्ग पर ले जाता है, उसी आंगन में ले जाता है और मानवत्व का जो अन्तःकरण है वह भ्रष्ट हो जाता है और जहां मानव का अन्तःकरण भ्रष्ट हो जाता है तो जानो कि अन्तरिक्ष से जो आने वाले परमाणु हैं वह मानव-जीवन से सुगठित होते हैं। इसीलिये ऋषि मुनियों ने इस अन्तरिक्ष को एक प्रकार का कल्पवृक्ष कहा है। आज मानव जैसी कल्पना करता है, जैसे उसके विचार होते हैं उसी के अनुसार अन्तरिक्ष में से वही परमाणु आने प्रारम्भ हो जाते हैं।

मुझे स्मरण आता रहता है आज जिन गृहों में समय मनमग्नता रहती है, स्वर्ग के तुल्य वह गृह होता है। उस गृह में जब मानव क्लिष्ट हो जाता है, तुच्छ हो जाता है पापी बन जाता है, कामी बन जाता है तो गृह की जो सीमा है वह उसको उच्चारण करने लगती है कि यह काम से भरा हुआ गृह है। और जिन गृहों में यज्ञ इत्यादि होते रहते हैं, वेद मन्त्र उच्चारण होते रहते हैं, वेदों का पठन पाठन होता

रहता है, उद्गार वाक्य रहते हैं, सुन्दरता में परिणत रहता है तो वह जो गृह होता है वह स्वर्ग कहलाया जाता है। आज मानव को स्वर्ग लाना है या नर्क लाना है यह विचार-विनिमय कर लेना चाहिये।

आज प्राय: मानव किसी को कष्ट देना चाहता है। एक मानव कहता है कि मैं इसका कर्णाधार बन गया हूं मैंने इसको ऊंचा बना दिया परन्तु यह उसकी एक प्रकार की सूक्ष्मता है। क्यों है ? आज कोई मानव कहता है कि अमुक व्यक्ति को मैंने ऊंचा बना दिया परन्तु यह कदापि नहीं परन्तु जो मानव क्लिष्ट होना चाहता है उसको तुम ऊंचा कैसे बना दोगे। ऊंचा संसार में वही व्यक्ति बनेगा जिसके हृदयमें उदारता होगी, करुणा होगी जो अहिंसा परमोधर्म का पुजारी होगा, जो प्रभु का विश्वासी होगा, जिसे प्राणीमात्र से स्नेह होगा। यदि आज कोई मानव यह कहता है कि अमुक व्यक्ति को मैंने ऊंचा बना दिया परन्तु यह उसकी एक प्रकार की धृष्टता है क्योंकि उसने उस व्यक्ति को जाना ही नहीं। कोई व्यक्ति संसार में किसी को ऊंचा नहीं बनाता। जो भी मानव ऊंचा प्रबल बनता है वह कर्मों के अनुसार और विचारों के अनुसार ऊंचा बना करता है। वह विचार उसके इस जन्म के हों या पूर्व जन्म के हों। किसी भी जन्म के संस्कार उसको ऊंचा और न्यून बना दिया करते हैं।

तो मेरे प्यारे भद्र पुरुषो ! आज हम प्रभु की याचना करते हुये यह उच्चारण करते चले जायें कि अन्तरिक्ष में क्या-क्या है। आज हम जैसे वाक् उच्चारण करते हैं एक मानव अशुद्ध उच्चारण करता है तो अशुद्ध वाक् अन्तरिक्ष से प्रारम्भ होने लगते हैं क्योंकि उसके शब्दों की जो रचना है वह रचना

अन्तरिक्ष में चली गई और वही रचना जब मानव के मस्तिक में आती है तो वही रचना आने लगती है क्योंकि मानव के शरीर में एक एक यन्त्र ऐसा है कि जिसका वर्णन नहीं किया जाता। मानव के शब्द कितनी दूरी चले जाओ एक क्षण समय में विचार आया और मानव शरीर में जो यन्त्र हैं उस शब्द की रचना स्वतः क्षण समय में कर देते हैं और वह उसको उस वायुमण्डल से उसी तत्वे से उस परमाणु को, उन वाक्यों को ला करके रचना करके मानव के एक क्षण समय में प्रारम्भ होने लगते हैं। अरे। यह है प्रभु का विज्ञान जिसके ऊपर मानव चकित हो जाता है। आज जब हम प्रभु के विज्ञान के ऊपर विचार विनिमय करने लगते हैं तो इस अन्तरिक्ष की कैसी सुन्दर रचना है कि इसमें मानव के विचार विराजमान हैं, प्राणी मात्र के विचार विराजमान हैं परन्तु जो जैसे विचारों का होता है वही विचार मानव के समीप आ जाते हैं।

हे मानव ! हमारे शरीर में बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दस हजार दो सौ दो नाड़ियां कहलाती हैं परन्तु मुझे कोई ऐसा स्थान प्रतीत नहीं। होता जहां वेद की पोथी की पोथी विराजमान हो जहां मानव के व्याख्यानों की पोथी की पोथी विराजमान हो परन्तु यह सब कुछ कहां से आता है इसके ऊपर बहुत कुछ विचार विनिमय करना है। यदि इसके ऊपर पुनः पुनः विचार विनिमय किया जायेगा तो मानव का जीवन सुगठित होता चला जायेगा, मानव के जीवन में व्यापकवाद आता चला जायेगा उसी से मानव की रचना सुन्दर होती चली जायेगी। किस प्रकार ? 'ब्रह्म अस्वो कृतिः सदोः' जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारा जो मानव शरीर है, हमारी जो मानव रचना है वह नस नाड़ियों की रचना है,

कोई ऐसा स्थान नहीं परन्तु इसमें मन्त्र तो इस प्रकार के हैं जिनका सम्बन्ध अन्तरिक्ष से होता है। जो वाक् हैं वह अन्तरिक्ष में हैं, श्रोत्र ले लेते हैं, श्रवण करते रहते हैं, विचारधाराओं में आते रहते हैं परन्तु देखो उनकी जीवन की जो एक अनुपम एक धारा होती है उसको ऊंचा बनाना, मानवता में लाना और योगिकता में परिणत कर देना यह सब मानवत्व का कार्य होता है।

आज प्रायः मानव कहता चला जाता है कि ब्रह्मचर्य क्या है ? मैंने बहुत पूर्व में ब्रह्मचर्य की विवेचना प्रकट करते हुये कहा था कि प्रायः मानव को ब्रह्मचारी रहना चाहिये क्योंकि ब्रह्मचर्य से मानव का जीवन पवित्र होता है। प्रायः मानव कहता है कि किस प्रकार पवित्र होता है ? हमारे यहां कुछ ऐसी यौगिक क्रियाएँ इस प्रकार की होती हैं। प्रायः मानव कह देता है कि प्राणायाम करने से क्या लाभ है ? मैंने बहुत पूर्व काल में कहा था कि मानव को प्राणायाम करना चाहिये। जब मानव रेचक और कुम्भक प्राणायाम करता है तो ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वा गति हो जाती है और जहाँ ब्रह्मचर्य ऊर्ध्वा हुआ वहां मानव की धूर्वा गति न रह करके ऊर्ध्वा गति हो जाती है और ऊर्ध्वागति में प्रभु का दास होता है, प्रभु ऊर्ध्वा में रहता है और जब मानव की प्रवृत्तियों का सम्बन्ध ब्रह्म से तल्लीन हो जाता है और वायु मण्डल को शुद्ध और पवित्र बनाता चला जाता है क्योंकि विचार पवित्र बन गये। ब्रह्मचर्य से मानव के विचार सुन्दर बनते हैं। ब्रह्मचारी रहने से मानव में एक महान् बल की प्राप्ति होने लगती है, मानव की धूर्वागति नहीं रहती, ऊर्ध्वा बन करके वह ब्रह्म को प्राप्त होने लगता है क्योंकि जो ब्रह्म का चिन्तन, ब्रह्म का मनन करता

हैं उसी को ब्रह्मचारी तो कहते हैं। ब्रह्मचर्य की गति जहां ब्रह्म में हुई तो उसी को ब्रह्मचारी कह देते हैं।

यह सर्वंश संसार ब्रह्मचारी बन जाये तो इस संसार का क्या बनेगा यह प्रश्न आते रहतेहैं। मेरे प्यारे महानन्दजी ने भी एक समय यह प्रश्न किया था और यह कहा था कि यदि सर्व संसार ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी बन जाये तो यह संसार कैसे चलेगा। तो मैंने कहा था कि बेटा! तुम इस मानवत्व को अपने अधिकार में नहीं ला सकोगे। यदि आज तुम यह जानना चाहो कि यह सर्वंश संसार ब्रह्मचारी बन जाये तो इस संसार का क्या बनेगा परन्तु जब यह ब्रह्मचारी बन जायेगा, जब यह संसार सर्वंश ब्रह्मचारियों का हो जायेगा तो ब्रह्मचारी कई प्रकार के होते हैं उनमें इस प्रकार के ब्रह्मचारी भी होते हैं जो सन्तान इत्यादि की उत्पत्ति भी हो सकती है परन्तु जब प्रत्येक प्राणी की ऊर्ध्वागति हो जाती है तो यह संसार स्वर्गमय हो जाता है वायु मण्डल पवित्र हो जाता है। सतोयुग के काल में प्राय: मानव प्राणायाम करने वाला होता है, सन्तानोत्पत्ति भी नियमानुसार होतीहै मेरी प्यारी माता जो प्राणायाम करती है,जो मानव प्राणायाम करता है,उन्हें प्राणायाम करते २ इतना ज्ञान हो जाता है कि वह नक्षत्रों में और इस प्रकृति की गति की जो धाराएं हैं इनको जानने लगताहै और उसके पश्चात् जो वह गर्भ की स्थापना होती है तो वह पुत्र अथवा पुत्री की माता पिता के समीप उसकी मृत्यु नहीं होती। अब इसके ऊपर विचारविनिमय और चिन्तन कियाजाये तो तुम्हें प्रतीत होगा।

मुझे स्मरण है भगवान् कृष्ण गृह आश्रम में प्रविष्ट होते थे परन्तु वह नित्य प्रति प्राणायाम करते रहते थे। रात्रि होती प्राणायाम करते रहते, दिवस होता प्राणायाम करते

रहते परन्तु उनके प्रद्युम्न जैसा पुत्र। एक नहीं परन्तु यहां वेदव्य व्यास प्राणायाम करते रहते और महर्षि वेदव्य व्यास के महर्षि सुख देव जैसा प्यारा पुत्र जो संसार का प्रिय बालक। एक नहीं मुझे नाना वाक्य स्मरण आते रहते हैं। माता मैत्रै, महर्षि याज्ञवल्क्य महाराज प्राणायाम करते रहते,उनका जीवन कितना तपस्यामय था। इसी प्रकार राजा जनक ने सीता जैसी पुत्री को जन्म दिया। इसी प्रकार राजा दशरथ नित्य प्रति प्राणायाम करते और राम जैसे बालक उनके गृह जनमे। इसी प्रकार महाराजा दलीप जी, रघु प्रणाली तो इसी प्रकार की थी। भगवान् मनु जी जब गृह आश्रम में प्रविष्ट हुये तो पति पत्नी प्राणायाम करते रहते और उनके अक्षय जैसे बालक का जन्म हुआ अक्षुवा प्राणायाम करता रहता था परन्तु सूर्य जैसा पुत्र जन्मा। इसी प्रकार सूर्य नाम के राजा प्राणायाम करते रहते तो उनके सामभुक् नाम के राजा का जन्म हुआ जो निर्मोही कहलाया गया। मैं इस सम्बन्ध में संसार का साहित्य नहीं लेना चाहता हूं, केवल यह उच्चारण करने के लिये आ पहुँचा हूं कि आज हम संसार को सतोयुग में लाना चाहते हैं, राष्ट्रीयता में लाना चाहते हैं, आज हम अपनी सीमा पर शत्रु को दृष्टिपात नहीं करना चाहते संसार को सुख और शांति में चाहते हैं भ्रष्टाचार को नष्ट करना चाहते हैं तो प्रायः प्रत्येक मानव के हृदय में यौगिक वाक्य होना चाहिये। प्रत्येक मेरी प्यारी माताओं के हृदय में यौगिक वाक्य होना चाहिये। आज जब मेरी पुत्री ब्रह्मचारिणी रहती हैं तो ब्रह्मचारिणियों का कर्त्तव्य है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म २१ प्राणायाम अवश्य करने चाहियें। इससे उनके मन की गति चंचल नहीं होती। जहां मन की गति चंचल हो वहीं प्राणायाम करो मन की चंचलता

समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार जो मन को शान्ति लाने वाला कार्य है उसी को प्राणायाम कहते हैं। आज मैं प्राणायाम के सम्बन्ध में विवेचना देने नहीं आया हूं केवल यह कि आज हम इस गृह आश्रम को और वायु मण्डल को पवित्र बनाना चाहते हैं।

हे मेरे प्यारे ऋषि मण्डल ! गृह आश्रम को पवित्र बनाना चाहते हो तो गृह मे सदैव यज्ञ होते रहें, पठन पाठन होता रहे पति पत्नी और प्यारे पुत्र सभी प्रसन्न हों। वह कार्य नहीं होने चाहियें जो मानवता से दूरी हो। मानव वाले कार्य हों, मनन होना चाहिये। जहां मनन होता है वहां धृष्टता नहीं आती। यहां किसी का भी चिन्तन कर लो वही तुम्हारे समीप आने प्रारम्भ हो जायेंगे क्योंकि यह जो अन्तरिक्ष है यह तो एक परमाणुओं का समूह है, इसमें सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु ही परमाणु हैं, महान् से महान् परमाणु हैं, क्लिष्ट से क्लिष्ट परमाणु हैं। देखो यदि एक मानव क्रोध अधिक करता है तो उसे क्रोध ही आने लगता है क्योंकि क्रोध के परमाणु उसके समीप अधिक आने लगते हैं। वह जो नाम माम का प्राण है वह उन परमाणुओं को अपने में श्रवण करता रहता है और परिणाम यह होता है कि मानव क्रोध में भस्म हो जाता है एक समय। आज हम अपने जीवन को, अपनी यौगिकता को ऊंचा बनाना चाहते हैं।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने कल के वाक्यों में आत्म-विश्वास के सम्बन्ध में बहुत सुन्दर विवेचन दिया परन्तु मैं भी उसका उपदेश दिया करता हूं। आत्मविश्वासी प्राणी कौन होता है? आत्मविश्वासी प्राणी राष्ट्र के राष्ट्र को कम्पायमान कर देता है। जब वह राष्ट्र के राष्ट्र को कम्पायमान कर देता

है वह कितना महान् वह कितना अहिंसा परमोधर्म और आत्म-विश्वासी है। इसी प्रकार आज हम आत्मविश्वासी बने। आज आत्मविश्वास की एक चर्चा स्मरण आगई। जब भगवान् राम, लक्ष्मण और सीता बन को जानेलगे तो लक्ष्मण ने अपनी पत्नी ऊर्मिला से कहा था कि तुम भी वन को चलो। मैं राम की सेवा करूंगा तुम माता सीता की सेवा करना। उस समय आत्म विश्वासी ऊर्मिला ने क्या कहा था ? उसने कहा था कि हे पति ! जब तक आप आओगे मैं निर्मल दूध की भांति संसार में रहूंगी। यदि मैं आपके साथ चली गई तो सेवा भाव नष्ट हो जायेगा, सेवा भाव नहीं रह सकता क्योंकि जब मैं आपकी पत्नी बन करके चलूंगी तो सेवक नहीं हो सकते। इसलिये प्रभु ! आप जाइये। राम और माता सीता की सेवा करो। मुझे आत्मविश्वास है मैं आपको चौदह वर्ष पश्चात् ऐसी प्राप्त होऊंगीं जैसी आप त्याग कर जा रहे हैं। इसका नाम आत्म-विश्वास है। लक्ष्मण चले गये। इसके उच्चारण करने का मेरा अभिप्राय यह था कि जो भंयकर वन को चले गये तो रात्रि छा गई थी, राम लक्ष्मण सीता तीनों वन में पर्वतों की शैय्या बनाये विराजमान थे। राम गाढ़ निद्रा में तल्लीन थे, लक्ष्मण भी। पूर्णिमा का चन्द्रमा अपना प्रकाश दे रहा था। उसी भयंकर वन में एक मृगराज आ गये। मृगराज के मन में यह विचार था कि इनको मैं पान करूं परन्तु माता सीता जाग रहीं थी। अब माता सीता ने यह विचारा कि यदि राम को जागरूक किया तो यह पाप है, लक्ष्मण को जागृत किया तो यह भी पाप है क्यों जब मानव निद्रा में होता है तो उसकी जो ज्ञानेन्द्रियां, कर्म इन्द्रियां और मन यह अन्तःकरण में होता है और अन्तःकरण का सम्बन्ध ब्रह्म से होता है इसीलिये ब्रह्म

के द्वार से मानव को नहीं आना चाहिये। अब उसका आत्म-विश्वास जागृत हुआ और उसने प्रभु से याचना की कि हे भगवन्! क्या यह मृगराज हमें आहार कर जायेगा तो उस समय मृगराज से अपने मन ही मन वेदना कर रही थी कि हे मृगराज! मैं जानती हूं कि हम तेरे राष्ट्र में हैं परन्तु मार्ग का जो अधिराज होता है उसका कर्त्तव्य है कि सबकी रक्षा करे। वह सबका रक्षक होता है। हम तेरे राष्ट्र में हैं हमारी रक्षा करो। हे मृगराज! तू इस मार्ग को त्याग और उस मार्ग को अपना। यह वेदना माता सीता के मन की वेदना आत्म-विश्वास की थी उस मृगराज के मन को उस वेदना ने जा छूआ। जहां मन की वेदना मन के द्वारा चली गई तो उस मृग-राज ने वह मार्ग ही त्याग दिया। इसका नाम है आत्मविश्वास जो मानव इसको धारण कर लेता है उसके जीवन में किसी भी काल में अन्धकार नहीं आता। अन्धकार उन व्यक्तियों के जीवन में होता है जो अभिमानी होते हैं, जो माया की लोलु-पता में सदैव संलग्न रहते हैं, उन्हें आत्मविश्वास स्वप्न में भी नहीं हो सकता। इसी लिये मानव को विचार विनिमय में करना है कि आज हम कुछ चिन्तन करें और अपने उस प्यारे प्रभु का चिन्तन करें जिससे हमें यह बल प्राप्त होता है।

मैंने आज कुछ अन्तरिक्ष की चर्चायें प्रकट की हैं कुछ वायु मण्डल की चर्चायें प्रकट की हैं परन्तु हम यह विचारते हैं कि मन की जो तरंगें हैं वह अन्तरिक्ष में रहती हैं,जो वाक्य उच्चा-रण करते हैं वह भी अन्तरिक्ष में रहते हैं। परन्तु यह सब उसके विचारों के साथ २ आते रहते हैं। आते जाते यह कहीं नहीं हैं यह अन्तरिक्ष में विराजमान रहते हैं, अन्तरिक्ष में

हम रहते हैं। सभी प्राणी उसी के क्षेत्र में रमण करते रहते हैं।

आज का अब हमारा यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम अपने प्रभु का चिन्तन करते हुये, अपने देव की महिमा का गुणगान गाते हुये, इस परमात्मा के रचाये हुये क्षेत्र में, इस वायु मण्डल में आये हैं तो इसको शुद्ध बनाना है विचारों से शुद्ध बनाओ, मग्न होकरके शुद्ध बनाओ, ब्रह्मचारी रह करके शुद्ध बनाओ, प्राणायाम करने से शुद्धबनाओ परन्तु वायु मण्डल पवित्र होना चाहिये जिससे हम प्रभु की सृष्टि को दूषित न करते चलें।

तो यह आजका वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। कल समय मिलेगा तो मैं मानव जीवन और वेद इन दोनो का जो आपस में परस्पर सम्बन्ध है उसकी चर्चा करूंगा। आज का यह वाक्य समाप्त हुआ।

धन्य हो!

गुरु देव! आज का आपका वाक्य वड़ा प्रिय लगा। तो मुनिवरो! आज का यह वाक्य समाप्त होता चला गया। अब वेद का पाठ।

त्रयीविद्या की चार धारायें

(वेद और मानव जीवन में परस्पर सम्बन्ध)

२ अगस्त १९६८

आर्य भवन जोर बाग, नई दिल्ली

जीते रहो।

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गान गाते हुये चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हम उप पठन पाठन की अनुपम पद्धति को अपनाना चाहते हैं जिस पद्धति के द्वारा यह महान् विश्व ऊंचा बनता चला जाता है। हमारे यहां ऋषि-मुनियों ने विश्व की कल्पना की है कि विश्व का कल्याण हो क्योंकि वेद वाणी किसी विशेष व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं है। वेद वाणी तो कल्याणी है। कोई भी मानव हो उसी के लिये वह कल्याणकारी है। जब हम यह विचारने लगते हैं कि यह किसी की सम्पत्ति है तो उस मानव के कितने संकीर्ण विचार हो जाते हैं और संकीर्ण विचारों से जिस पद्धति को महापुरुष लाना चाहते हैं वह पद्धति नहीं आ पाती क्योंकि वही तो पद्धति लानी है और उसी पद्धति को लाने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के विशेषांकुर विचार उत्पन्न होने लगते हैं। संकीर्णता आ जाती है। आज हम अपने विचारों को संकीर्ण नहीं बनाना चाहते।

हमारे आज के प्रारम्भ के वेद मन्त्रों में उस परब्रह्म परमात्मा की याचना की जा रही थी। हे परमात्मन् ! किसी भी लोक लोकान्तर का प्राणी हो परन्तु जब उसे अशान्ति प्राप्त होती है तो वह तेरी ही शरण आ जाते हैं। वह उस परम पिता परमात्मा के शरणागत आ करके और अपनी मानवता को शान्ति प्रियता बना करके प्रस्थान कर जाते हैं। इसी प्रकार आज हम उस प्रभु की याचना करते हुये, उस ब्रह्म की याचना करते हुये आज हम अपने जीवन को ऊंचा बनाते चले जायें क्योंकि मानव किसी भी आंगन में भ्रमण करने वाला हो परन्तु एक समय उसका हृदय कष्टमयी प्रतीत होने लगता है। आज हम प्रभु से याचना कर रहे हैं कि हे प्रभु ! तू संसार के प्राणियों को ऊंचा बना। हे प्रभु ! इनके द्वारा ओज और तेज हो। इन्हीं से यह समाज और राष्ट्र ऊंचा बना करता है भगवन्। जब हम प्रभु की याचना करते हैं तो हमारा हृदय गद्गद् होने लगता है। मैं अपने प्रभु से यह कहा करता हूं कि हे परमात्मन्। तू कितना उज्ज्वल है,तेरी महानता कितनी महान् है, तू उस महानता का दिग्दर्शन करता है जहां मानव किसी काल में स्वप्नवत् भी दृष्टिपात नहीं कर पाता। आज हम उस मनोहर देव के द्वारा जाना चाहते हैं। प्रायः मानव की उत्क्रट इच्छा रहती है, मेरा प्यारा कोई भी मानव हो परन्तु वह प्रभु के लिये उत्सुक रहता है क्योंकि आनन्द जो प्राप्त होता है। आनन्द के लिये वह अपने जीवन को सदैव प्रगतिशील बनाता रहता है। यह उत्कट इच्छा जागृत रहती है कि मैं आनन्द को प्राप्त करने वाला बनूं। आज मैं अपने उस आनन्द को पान करना चाहता हूँ जिस आनन्द में वास्तव में परम अग्रित आनन्द प्राप्त होता

चला जाये।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषो! आज हम उस मनोहर देव की याचना करते हुये, उस देव की शरण में जाते हुये हम उसकी याचना करते चले जाते हैं और कहा करते हैं कि हे प्रभु! तू हमें अपनी गोद में धारण कर, अपने आंगन में धारण कर जिससे हमारा जीवन आपसे सुगठित रहेगा तो भगवन्! हमारे जीवन में अशान्ति न होगी।

तो मेरे प्यारे भद्र पुरुषो! मानव का जीवन तो वेद से सुगठित रहता है। वेद और मानवता दोनों की सुगठितता कैसे रहती है? विचार आता है कि वेद किसी एक पोथी को नहीं कहा जाता। वेद नाम ज्ञान का है परन्तु उस ज्ञान को कहते हैं जो पराज्ञान है। जिससे मानव का अन्तर आत्मा पवित्र होता है। उसको हमारे यहां वेद रूपी प्रकाश कहते हैं क्योंकि मानव के जीवन से उसका घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। जब यह विचार विनिमय करते हैं कि मानव जीवन से सर्वत्र वेद से सुगठितता रहती है, वह किस प्रकार रहती है इसके ऊपर मानव को विचार विनिमय करना है और इसी के ऊपर मानव को अपना जीवन ऊंचा बनाना है।

आज कोई भी मानव यह विचार विनिमय करने लगे कि मैं वेद को स्वीकार नहीं करता वेद तो किसी विशेष व्यक्ति की सम्पत्ति नहीं, वेद नाम तो प्रकाश का है। कौन मानव यह कहता है कि संसार में वह प्रकाश को नहीं चाहता। प्रत्येक मानव प्रत्येक मेरी प्यारी माता, प्रत्येक ऋषि मण्डल सब प्रकाश को चाहते हैं। नास्तिक भी यह नहीं कहता कि मैं प्रकाशको नहीं चाहता परन्तु नास्तिक व्यक्ति यह भी नहीं कहता कि मैं सूर्य के प्रकाश के साथ साथ मैं आत्मा का प्रकाश नहीं

चाहता। हृदय में प्रकाश तो चाहता है। उसी प्रकाश का नाम हमारे यहाँ वेद कहा गया है।

वेद का जो विकास है वह देवताओं के द्वार से है और देवताओं का जो ज्ञान है वह सर्वत्र ज्ञान होता है वह किसी विशेष व्यक्ति की या विशेष समाज की वह सम्पदा नहीं होती। वह सर्वंश विश्व की सम्पदा होती है। वह व्यक्ति इस पृथ्वी मण्डल पर विराजमान होने वाला हो, सूर्य मण्डल में हो, चन्द्र मण्डल में हो, शुक्र में हो, मंगल में हो परन्तु सब प्राणियों के लिये एकसा प्रकाश होता है। आज कौन प्राणी है जो प्रकाश को नहीं चाहता। नास्तिक व्यक्ति यह कहता है कि मेरा हृदय पवित्र हो, मेरे हृदय से वाक् सुन्दर हो, वह ईश्वर को स्वीकार नहीं करता परन्तु यह अवश्य उच्चारण करता है कि तू अपमान न कर और तेरे हृदय में, अन्तरआत्मा में शांति और महानता विराजमान होनी चाहिये। सभी प्राणी यही उच्चारण करते रहते हैं। इसी प्रकार आज हम उच्चारण कर रहे थे कि मानव का जीवन वेद रूपी प्रकाश से सुगठित रहता है। जहां वेद रूपी प्रकाश नहीं होता वहां मानवता भी नहीं होती, वहां मानव का जीवन भी नहीं होता। इसी लिये जब हम वेद रूपी प्रकाश को अपना लेते हैं तो वास्तव में हम उस संसार को ऊंचा बनाते हुये इस संसार से पार हो जाते हैं।

तो मेरे प्यारे भद्र पुरुषो ! अभी अभी हम उच्चारण करते चले जा रहे थे कि हम वेद को अपनायें क्योंकि वेद कहते हैं त्रयीविद्या को, जिसमें तीन प्रकार की विद्यायें होती हैं, ज्ञान, कर्म और उपासना। इन तीनों को विचारना ही हमारा वेदज्ञ बन जाना है, प्रकाश में पहुंच जाना है। सबसे प्रथम ज्ञानकाण्ड

आता है। मानव किसी भी लोक-लोकान्तरों में रहे परन्तु सबसे प्रथम उसे ज्ञान की आवश्यकता है, वह ज्ञान का उत्सुक रहता है, उसे यह इच्छा रहती है कि तू ज्ञान को प्राप्त कर, ज्ञान तुझे कहां प्राप्त होगा ? वेद की सबसे प्रथम व्याहृति को ज्ञान माना गया है। वह ज्ञान जब मानव को प्राप्त हो जाता है तो मानव जीवन पुलकित हो जाता है। ज्ञान हमारी एक महान् सम्पदा है, संसार की सम्पदा है, किसी विशेष की सम्पदा नहीं विश्व की सम्पदा है। मानव जब ज्ञान के क्षेत्र में जाता है, तो प्रत्येक वस्तु का उसे ज्ञान हो जाता है, यह यज्ञशाला है, यह सामग्री है, यह अग्नि है, यह जल है, यह नाना वनस्पतियां हैं,यह पृथ्वी है और यह देखो वायु रमण कर रहा है, इन दिशाओं का गुण हमारे शरीर में ओत-प्रोत हो गया है। यह सब कुछ ज्ञान उसे प्राप्त हो जाता है कि यह पृथ्वी है, इस पृथ्वी में खाद्य और खनिज भी हैं और जल किस प्रकार रमण कर रहा है यह सब ही कुछ उसकी क्रियाओं में विचार विनिमय होने लगता है, उन्हीं विचारों से एक विशाल विचार आना प्रारम्भ हो जाता है। वह विशाल विचार क्या है ? वह ज्ञान है।

जब ज्ञान आने लगता हैं तो उसके पश्चात् उसे कर्मकाण्ड के लिये वाध्य किया जाता है। वही मानव कर्मकाण्ड के क्षेत्र में चला जाता है। कर्म काण्ड किसे कहते हैं ? मानव अपने आसन पर विराजमान होता है, कैसे अपने आसन से प्रस्थान करता है, कैसे दूसरों का आदर करता है, कैसी उसके हृदय की सहानुभूति है, वेद के अनुकूल वह कितना यज्ञवेत्ता है, यह सब कुछ विचार उसके कर्म काण्ड में आने लगता है। कर्मकाण्ड ही मानव को ऊंचा वना देता है। आज जब मानव

कर्मकाण्ड के क्षेत्र में जाता है तो यह कर्मकाण्डी व्यक्ति वज्ञानिक बनते हैं, राष्ट्र पिता बनते हैं, अधिराज बन जाते हैं। यदि राजा के राष्ट्र में, राजा के विधान में किसी प्रकार की सूक्ष्मता रह जाती है तो वही राष्ट्रवाद के लिये एक विडम्बना हो जाती है, दुःखद होंने लगता है परन्तु जब राष्ट्र का कर्मकाण्ड सुन्दर होता है— कैसा कर्म काण्ड ? ब्राह्मण कैसा हो ? ब्राह्मण का स्थान कहां होना चाहिये ? राजा जब न्यायालय में विराजमान हो तो राजा का स्थान कैसा हो ? कैसी उसकी गति होनी चाहिये उस काल में ? कैसे मन्त्रीगण विराजमान होते हैं ? क्या-क्या वार्त्ता होनी चाहिये ? किस प्रकार का अपराध हो तो कैसा न्याय होना चाहिये ? जब यह सब चिन्तन किया जाता है और इसको कर्मकाण्ड में और क्रियात्मक में लाया जाता है तो मानव का जीवन एक महान् से महान् बन जाता है।

आज मैं यह उच्चारण करने नहीं आया हूं, मैं कोई अधिक व्याख्याता नहीं हूं, केवल संक्षिप्त में परिचय देने आया हूं। मेरी प्यारी माता जब अपने प्यारे पुत्र को लौरियां देती है उस समय अपने प्यारे पुत्र को विधिवत् उसको जागरूक करती है, विधिवत् उसका नामकरण संस्कार होता है। यह सब कुछ कर्मकाण्ड की पद्धति मानी गई है। कर्म काण्ड की पद्धति में यज्ञशाला में आ जाओ कहां ब्राह्मण होना चाहिये, कहां ब्रह्मा का स्थान हो, कहाँ पुरोहित का हो, कहां अध्वर्यु का हो, कहां उद्गाता का हो, कहां यजमान विराजमान हो यह सब कर्मकाण्ड यज्ञ की पद्धति में माना गया है। देखो शतपथ ब्राह्मण में महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बड़े विस्तार से इसका वर्णन किया है। आज मैं इसका संक्षिप्त परिचय देने

जा रहा हूँ और वह परिचय क्या है कि आज हम कर्मकाण्ड की पद्धति को अपनायें। यज्ञ का जो कर्मकाण्ड है, आहुति किस प्रकार दी जाये, आहुति के साथ में कौनसा शब्द हो, और उस शब्द की रचना किस प्रकार की हो, यह जब सब कुछ होता है तो होता कहता है 'स्वाहा'। स्वाहा कहते ही उसकी वाणी में कितनी महानता, कितनी प्रबलता होनी चाहिये यह सब कुछ देखो कर्मकाण्ड की पद्धति मानी गई है। आज कर्मकाण्ड की पद्धतियों में जब परिक्रमा से कटिबद्ध होते हैं और यज्ञशाला की जब परिक्रमा होती है तो जिस प्रकार परब्रह्म परमात्मा ने जब इस संसार रूपी यज्ञशाला को रचा था तो कितना कर्मकाण्ड इसमें रचा, किस प्रकार की इसमें सुन्दर क्रिया दी है। आज वह ब्रह्मवेत्ता जो रचयिता है, यह जो संसार रूपी ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात आ रहा है इसको रचा है, कितना सुन्दर कर्म है, कितनी सुन्दर परिक्रिया है, आज प्राणी किसी भी आंगन में कितना भी चला जाओ परन्तु वह दूरी से दूरी इसको अपने आग्रन्तों से दूरी पहुंचा देता है। आज वास्तव में हम उस कर्म काण्ड की पद्धति को अपनाते चले जायें जिस कर्मकाण्ड की पद्धति को जहां 'स्वाहा' कहना चाहिये वहाँ 'स्वाहा' होना चाहिये। आहुति किस प्रकार भुजों में लेनी चाहिये, उसके द्वारा कैसे विचार हो, सब कर्मकाण्ड में आता है। आज हम कर्मकाण्ड की वेदी पर चलें, कर्मकाण्ड की पद्धति को अपनाते चले जायें जिस पद्धति को अपनाने से हमारा जीवन महानता की प्रबल वेदी पर चला जाता है जिस वेदी को अपनाते हुये हम संसार में एक महान् व्यक्तित्व को ले करके उस महानता की पवित्र वेदी पर चले जाते हैं। यह सब कर्मकाण्ड मानव के जीवन से कटिबद्ध

होता है। यदि इसका मानव जीवन से सम्बन्ध नहीं तो हम इसको कर्म काण्ड कह ही नहीं सकेंगे। राष्ट्र और समाज सभी इससे सुगठित रहता है। इसी प्रकार इसमें वैज्ञानिक जन होते हैं, उनका इनसे सम्बन्ध रहता है। वैज्ञानिक यह जानते हैं कि अमुक धातु का किस प्रकार प्रयोग किया जाता है। उन्हीं धातुओं के मिलान करने से शनौंग, अनुवात्, त्रीही नाना प्रकार की धातुओं को मिलान करने से नाना मन्त्रों का निर्माण होता है। तो यह सब कर्मकाण्ड में निहित हो जाता है।

आगे उपासना काण्ड आता है। उपासना किसे कहते हैं ? उपासना कहते हैं कि जैसी कोई वस्तु हो उसे ज्यों का त्यों उच्चारण करने का नाम उपासना कहा गया है। सूर्य को हम सूर्य उच्चारण करेंगे, चन्द्रमा को चन्द्रमा उच्चारण करेंगे, इसी प्रकार ज्ञानको ज्ञान उच्चारण करेंगे,उससे विचलित नहीं होना। यदि मानव उससे विचलित हो जाता है,उससे परिकाष्ठा में चला जाता है तो मानव के द्वारा वह पद्धति नहीं रह पाती जिसका उसे गौरव होता है। उपासना कहते हैं बेटा ! प्रभु की उपासना करना प्रभु का चिन्तन करना और प्रभु से जो वस्तु हमें प्राप्त होती है उसको अपने में धारण करने का नाम उपासना कहा जाता है।

उपासना का अभिप्राय क्या है ? आज हम अग्नि की पूजा करने चले हैं। जब हम अग्नि की यथार्थ रूप में पूजा करते हैं अग्नि की पूजा कैसे की जायें ? अग्नि का सदुपयोग किया जाये, यह उसकी पूजा कही जाती है। वायु है, वेग में रमण कर रहा परन्तु वायु का सदुपयोग किया जाये, वायु को याचना द्वारा अपने द्वार पर धारण करना चाहिये तो उसमें कोई अपराध नहीं हो पाता परन्तु वह उपासना की एक

पद्धति मानी गई है। आज हम उस महान् पद्धति को अपनाना चाहते हैं जिसको अपनाने से मानव का हृदय सब प्रकार से प्रसन्न हो जाता है।

आज हम पुनः उच्चारण करने आ पहुंचे हैं कि हम आज उस महान् कर्मकाण्ड की पद्धति को अपनाना चाहते हैं जिसको अपनाने से मानव का हृदय पुलकित हो जाता है, पवित्र बन जाता है। उस पवित्रवाद की पवित्र वेला में मानव अपने जीवनको वास्तवमें अग्रणिय बनाता चला जाता है। आओ मेरे प्यारे भद्र पुरुषो! आज हम पृथ्वी की उपासना करना चाहते हैं। कृषकों से कहो कि कृषको! तुम इस पृथ्वी से सुन्दर अन्नको उत्पन्न करो। इसकी चमड़ी को उधेड़ो,इसका यथाशक्ति स्वागत करो उसके पश्चात् इसे दुहो जैसे धेनु को दुहा जाता है। इस प्रकार जब पृथ्वी को दुहा जाता है तो नाना प्रकार के अन्न और खाद्य पदार्थों की उत्पत्ति हो जाती है। तो यह उस पृथ्वी की उपासना होती है। आज हम माता की उपासना करना चाहते हैं परन्तु माता का आदर करना, माता की सेवा करना माता की उपासना है। नेकी उसने भुजों के प्रतीति करते रहे, यह भी उसका आदर है, उसका स्वागत है, उसकी उपासना है परन्तु अन्न जल से तृप्त करना, उनके हृदय को सदैव प्रसन्न करना यह वास्तव में उपासना मानी जाती है। इससे मानव का हृदय सुन्दर बनेगा, मानव के हृदय में ऊंचे संस्कारों की उपलब्धि होती चली जायेगी।

आज हम प्रभु की उपासना करें। हम प्राणायाम करें और भी नाना कार्य करते चले जायें, ब्रह्मचारी रहें। जब हम ब्रह्मचारी रहते हैं तो हमें ब्रह्मचर्य की उपासना करनी है, ब्रह्मचर्य की रक्षा करने का नाम उसकी उपासना कहलाई

गई है। आज जब हम उसकी अच्छी प्रकार रक्षा करते हैं, प्राणायामों के द्वारा जैसा मैंने कल के वाक्यों में प्रकट कराया था रेचक और कुम्भक के द्वारा और कृकल और देवदत्त के द्वारा इस ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हैं तो ब्रह्मचर्य में जब ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वा गति हो जाती है तो यह उस ब्रह्मचर्य की उपासना है, यही उसका पूजन कहलाया गया है। मानो जब वह श्वासों की गति में सूक्ष्म परमाणु उसमें रमण करने लगते हैं तो इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाम की जो नाड़ी हैं उन नाड़ियों में एक ओज उत्पन्न हो जाता है, ओज उत्पन्न हो करके प्राणायाम करने से उनकी गति प्रबल हो जाती है, हृदय में मानवता के विशेष अंकुर उत्पन्न होने लगते हैं।

आज मैं अधिक चर्चा करने नहीं जा रहा हूं केवल यह कि आज हम मित्र मित्र की उपासना करते हैं। पत्नी पति की उपासना करती है, परन्तु पति की उपासना क्या है कि उसका यथाशक्ति स्वागत करना और यथाशक्ति उसके वाक्यों और पदचिन्हों पर चलना यह उसकी उपासना है। हमारे ऋषि मुनियों ने कहीं २ ऐसा कहा है कि "पतनम् ब्रह्मे व्याप्नोति गृहः" यदि गृह आश्रममें पतिमें किसी प्रकारकी कुरीति आजाये अथवा पत्नी में आ जाये तो उसे उसकी डंडे से उपासना करनी चाहिये। यदि किसी भीप्रकार की कुरीति आ जाती है तो उससे गृह भ्रष्ट होता है। उससे समाज की पद्धतियों में कुरीति आ करके राष्ट्र तक उसका प्रभाव चला जाता है। इसी लिये आज उपासना का क्या अभिप्राय है कि उन व्यक्तियों की डण्डों से उपासना करनी चाहिये।

तो क्या भगवन्! पत्नी को भी करनी चाहिये ?

(हास्य) तो मुनिवरो! अभी २ हम उच्चारण कर रहे थे

कि आज हमें समाज की उस महानता को ऊंचा बनाने के लिये उनकी उपासना यथाशक्ति करनी चाहिये। राजा को उन व्यक्तियों को दण्डित करना चाहिये जो राष्ट्रद्रोही हों तो यह उसकी उपासना कहलाई गई हैं। जैसे परमपिता परमात्मा जब न्याय करता है तो पापियों को पाप ही देता है, अपने राष्ट्र में जो सुविधाएं देनी चाहिये वह तो देता है परन्तु भोग का जो क्षेत्र है वह उसके संस्कार के अनुकूल भिन्न होता है, दिया जाता है। यह देखो उसका दण्ड है कैसा? कि उससे उसकी पद्धति, उसकी महानता में किसी प्रकार की भिन्नता नहीं होनी चाहिये उसी में उसकी महानता है कि उसको यथाशक्ति व्यवहार और यथाशक्ति उसको दण्डित किया जाता है उसके कर्मों और संस्कारों के अनुसार।

प्रभु संसार में सबसे महान् और उदार है। प्रभु जैसा उदार कोई नहीं हो सकता। प्रभु को कोई अनिष्ट उच्चारण करता है, कोई उसको अशुद्ध उच्चारण करता है, कोई असभ्यता से आता है, कोई सभ्यता से उपासना करता है परन्तु प्रभु की जो उदारता है, प्रभु की जो देन है वह सबके लिये एक समान होती है। यदि कोई आज प्रभु के निकट जाना चाहता है तो मानव को भी उसी प्रकार उदार हो जाना चाहिये, प्रभु से उसका मिलन हो जाता है। मानव को भी इतना उदार बन जाना चाहिये जैसे परमात्मा मान और अपमान से दूर है। परमात्मा को न मान व्यापता है न अपमान व्यापता है। इसी प्रकार जो प्राणी उदार बनना चाहता है वह इस प्रकार बन जाये जैसे प्रभु है। प्रभु उदार है, महान् है, पवित्र है। इसी प्रकार जब प्राणी बन जाता है तो उसका मिलन प्रभु से हो जाता है।

आज जैसे माता अपने प्यारे पुत्र को जब लौरियां देती हैं तो माता का हृदय बालक जैसा उदार हो जाता है। माता का हृदय इस प्रकार उदार हो जाता जैसे बालक। तो माता उस बालक के साथ स्वयं प्यारे पुत्र की भांति बन जाती है। स्वयं उसमें इतनी उदारता आ जाती है कि बालक को पिता कहना है माता उसको स्वयं पिता उच्चारण करने लगती है। यह उस माता की उदारता उस बालक के हृदय को और बालक के हृदय की उदारता माता के हृदय को छूआ करती है। इसी प्रकार मानव की उदारता प्रभु को छूने लगती हैं तो प्रभु की उदारता मानव को छूने लगती है। तो बेटा ! क्या मृगराज, क्या सर्प, जितने हिंसक प्राणी है वे सब ही उनके उत्सुक हो जाते हैं। मानव-मात्र तो बहुत दूर हो जाता है परन्तु हिंसक प्राणी भी उनको देवालय स्वीकार करके उनकी पूजा किया करते हैं। उनके उदार वाक्यों के उत्सुक रहते हैं। एक मानव ही नहीं रहता। प्रत्येक परमात्मा के सृष्टि में प्राणीमात्र है सब ही उसकी उत्सुकता किया करते हैं। जैसे परमपिता परमात्मा का सभी गुण गान गाते हैं। उस प्राणी को न सर्प का विष व्यापता है वह तो प्रभु जैसा उदार हो गया है।

तो आज हम क्या उच्चारण करते चले गये कि हम प्रभु की उपासना करना चाहते हैं तो यह उपासना वेदों में पर्याप्त है। वेद का हमारे जीवन से कितना सम्बन्ध है, कितनी सुगठितता है। इसी प्रकार मानव का जीवन तो उस वैदिकता से गुथा हुआ है। मावनवाद उस वैदिकता से गुथा हुआ है। देखो त्रयी विद्या है, ज्ञान कर्म और उपासना। विना इस तीन प्रकार की विद्या के पान किये मानव इस संसार

सागर से पार नहीं होता। वह कहीं मान अपमान की छत्र छाया में रहता है, कहीं और नाना प्रकार के कार्यों में संलग्न रहता है परन्तु उसके द्वारा उदारता के विशेष अंकुर जागृत नहीं हो पाते। परन्तु जब जागृत हो जाते हैं तो उसका जीवन सर्वंश वेदज्ञ होताहै। आज हम वेदकी उसपरम्पराको अपनाना चाहते हैं जिस परम्परा को अपनाने के पश्चात् मानव मानव बन जाता है, ऋषि ऋषि बन जाता है, पवित्रता की वेदी पर हम रमण हो जाते हैं, भ्रमण करने लगते हैं।

तो आज हम प्रभु की याचना करते हुये, उस देवता की उपासना करते हुये,हम स्वयं देवता बनने की उत्सुकता में रहें। मेरे प्यारे महानन्द जी ने बहुत पूर्व काल में यह कहा था कि आज कोई मानव संसार में मिथ्यावाद उच्चारण करके नाना प्रकार के द्रव्य को एकत्रित कर लेता है। अरे मानव! वह द्रव्य तेरे साथ नहीं जायेगा। तेरे साथ तो वही कर्म जायेगा जितना तुम अपने प्रभु से मिलान करते हो। आज तू अभिमान में विराजमान हो जाता है कि मैं इतना द्रव्यपति बन गया हूं, इतने गृह निर्माण किये हैं इनका मैं स्वामी हो गया हूं परन्तु यह तेरे हृदय में अभिमान है। यह अभिमान तुझे स्वयं निगल जायेगा। यह गृह यहीं के यहीं रह जायेंगे परन्तु एक समय वह आयेगा कि यह अभिमान ही तुझे निगल जायेगा। मुझे बहुत समय हुआ इस संसार को दृष्टिपात करते हुये। मुझे स्मरण है यहां महाराजा दुर्योधन ने क्या कहा था, महानन्द जी ने भी उच्चारण किया था, महाराजा रावण ने क्या कहा था कि मैं विजयी बनूंगा राम को नहीं आने दूंगा। रावण का चिन्ह भी नहीं रहा संसार में। कहां है रावण? कहां है वह स्वर्ण की लंका? वह इस पृथ्वी में रमण कर गई वह गृह दृष्टिपात

भी नहीं आते, हमारे समक्ष भी नहीं हैं परन्तु हम कल्पना कर लेते हैं, विचार धारा बना लेते हैं कि रावण राजा था,साहित्य में कल्पना कर लेते हैं परन्तु उसका चिह्न हमें प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार हे मानव ! तू अपने सूक्ष्म से जीवन के लिये प्रभु के पूजन को न त्याग क्योंकि प्रभु की जो उदारता है वह तेरे हृदय को जितना छू जायेगी उतना तेरा जीवन ऊंचा बन जायेगा और जितना तू प्रभु से दूरी रहेगा, मानसिक चिन्ताओं में रहेगा, द्रव्य की लोलुपता में रहेगा, जितनी तेरे में धृष्टता आती चली जायेगी उतनी तेरी मानवीयता तेरे से दूरी होकर के एक समय वह आयेगा कि तुझे महाराजा दुर्योधन की भांति वह स्वयं तुझे निगलती चली जायेगी।

इसी प्रकार हमें विचारविनिमय में कर लेना है कि हम स्वयं किस प्रकार के बने। हम अपने जीवन को सर्वंश वैदिक बनायें क्योंकि ज्ञान, कर्म उपासना से हमारा जीवन सुगठित होना चाहिये। हमारे जीवन में यदि वैदिकता नहीं है, महानता नहीं है, उदारता नहीं है तो हमारा जीवन कुछ नहीं कहलायेगा !

यह है आजका हमारा वाक्य ! मैं कोई अधिक चर्चा करने नहीं आया हूं, न कोई अधिक व्याख्याता हूँ, सूक्ष्म सी यह चर्चा अवश्य प्रकट करने आया हूं कि जैसा तुमने दो वाक्यों में बड़े सुन्दर सुन्दर विवेचन दिये और बेटा ! तुमने आधुनिक समाज के ऊपर विचार प्रकट करते हुये कहा था, मैंने भी बहुत पूर्व काल में कहा था, बेटा ! तुमने तो वर्णन ही किया था कि अग्नि प्रदीप्त होने वाली है परन्तु मुझे जब तुम्हारे यह वाक्य श्रवण करने का सौभाग्य प्राप्त होता है तो उसके कुछ भविष्य का ज्ञान होने लगता है और तुम्हारे कथनानुसार मुझे भविष्य

यह प्रतीत होने लगता है, ज्ञान होने लगता है कि वह समय दूरी नहीं है जब इस मानव को यथार्थ शान्ति के लिये अपने मानवत्व को समाप्त कर देना होगा। परन्तु आत्मिक बल, आत्मिक शान्ति हो जाना प्रभु के निकट जाना मानवत्व की ही वैदिकता है। इस वैदिकवाद को हम अपना करके इस समाज, इस राष्ट्र को ऊंचा बना सकते हैं अन्यथा राष्ट्र और समाज कैसे ऊंचे बनेंगे।

राष्ट्र और समाज जब भी ऊंचे बने आत्मिकता, महानता और वैदिकता से बने हैं। मैंने प्रारम्भ के शब्दों में कहा है कि वैदिकता किसी की सम्पदा नहीं है वह प्रत्येक प्राणी की सम्पत्ति है, वह मानव मात्र की सम्पत्ति है, वह मानव पृथ्वी मण्डल में रहो, सूर्य मण्डल में, चन्द्र मण्डल में रहो, शुक्र में रहो आदित्य में रहो, किसी भी लोकलोकान्तर में रहो, परन्तु वैदिकता ही मानव के लिये आवश्यक है जिससे जीवन की पवित्र धारा बनती चली जाये। राष्ट्र और समाज दोनों उन्नतिशील होते हुये इस संसार को ऊंचा बनाते चले जायें।

मानव का जीवन वैदिकता से सुगठित होना चाहिये और वैदिकता ही मानव का जीवन है। मुझे स्मरण है भगवान् राम का जीवन। भगवान् राम के जीवन में कितनी उदारता और मानवता थी। उनकी महान् उदारता और मानवता को दृष्टि-पात करते हैं जो राष्ट्रवाद स्मरण आने लगता है, समाजवाद स्मरण आने लगता है। समाज में जो प्रीति थी वह स्मरण आने लगती है। जो पर्वतों में रहने वाले राजाओं को जिन्हें अपने पगों से दूरी कर दिया था और यह कहा था तुम तुच्छ हो, शूद्र हो, भगवान राम ने उनको अपनाया। बिना उन्हें अपनाये राष्ट्र और समाज ऊंचा नहीं बनता। राष्ट्र समाज

जब ऊंचा बनता है जब यहां उन व्यक्तियों को अपनाया जाता है जिनको हम दरिद्र कह देते हैं और उन्हें त्याग देते हैं। उदार राजा जब तक उन्हें नहीं अपनाता तब तक उनका कल्याण नहीं होता। राष्ट्र, समाज में महान् सम्पदा नहीं आती। भगवान राम अयोध्या से कोई किसी प्रकार की प्रबलतायें और सहायता नहीं ले पाये परन्तु इतने बड़े साम्राज्य से संग्राम किया। पर्वतों में रहने वाले जिन्हें शूद्र कहा जाता था उन्हें अपनाया, निषाद जैसों को अपनाया और भी शूद्र व्यक्यों को अपनाकर, अपने कंठ लगा करके शबरी जैसी को अपना लिया। शबरी कैसी थी? मुझे स्मरण है वह महान् दरिद्रता में रहती थी परन्तु प्रभु का चिन्तन करती थी, राम की भी भक्त थी, राम ने उसे माता कह करके चरणों को छूआ। महान् व्यक्तियों के लिये उनके मुखारविन्दका एक कण भी अमृतके तुल्य हुआ करता है। भगवानराम को माता शबरी से कितनी प्रीति थी कि उसे यह ज्ञान था कि आज राम तेरे आश्रम में आयेंगे, तेरे आश्रम के निकट भ्रमण करेंगे, वह झूठे फलों को लेकरके राम के समीप लायी और कहा लीजिये प्रभु राम प्रेम से उसके चरणों को छू करके आनन्द से भोग लगाने लगे, नम्रता से उन्हें पान करने लगे। ऐसे २ दरिद्रों को अपना करके राम का जीवन कितना आदर्शवादी माना जाता है। जब हम महानता की वेदी पर राम को लाते हैं तो राम हर प्रकार से ऊंचे प्रतीत होने लगते हैं। त्याग और तपस्या में उनकी उदारता कितनी प्रबलता में थी। राम और लक्ष्मण दोनों इस प्रकार के थे इसी प्रकार माता सीता जैसा वैदिकवाद किस में हो सकता है। रावण के द्वारा राष्ट्र अपना, प्रजा अपनी, एक सीता को वह अपना नहीं बना सका क्यों उसके

द्वारा महान् चरित्र की मात्रा थी। कैसा ऊंचा चरित्र, कैसी वैदिकता उसके हृदय में सुगठित थी, माता सीता का हृदय वदिक कणों से गुथा हुआ था। कैसा सुन्दर गुथा हुआ कि रावण उसको छू भी नहीं सकता था। माता सीता ने यह कहा था कि हे रावण! मैं सती हूँ, मैं पतिव्रता हूं, मेरा एक पति है आज जो तूने पाप से मेरे शरीर को छू भी लिया तो तेरा अनिष्ट होता चला जायेगा। रावण में इतनी प्रबलता नहीं हुई कि माता सीता को वह छू भी सके। कैसी महानता उसके हृदय में थी। इसी प्रकार हे मेरी प्यारी माता! जब तेरा जीवन इस प्रकार चरित्र से, मानवता से सुगठित हो जाता है तो यह समाज क्यों वैदिकवाद में नहीं आ जायेगा। यह वैदिकवाद में आ जाना ज्ञान कर्म उपासना में आ जाना यह सब माताओं का कर्त्तव्य है, मानव का कर्त्तव्य है, प्रत्येक प्राणी का कर्त्तव्य है।

आज हम कहां चले गये। उच्चारण कर रहे थे ज्ञान, कर्म उपासना। यह त्रयी विद्या की हमारे यहांचार धाराएंहैं। चार प्रकार की धाराओं में तीन प्रकार की विद्यायें हैं ज्ञान, कर्म, उपासना। इनके मंथन करने के पश्चात् मानव और ऊंचा जाता है तो उसका नाम विज्ञान कहलाया जाता है। अब विज्ञान दो प्रकारका होता हैं एक भौतिक विज्ञान होता है एक आध्यात्मिक विज्ञान होता है। आज देखो हमें विद्युत को जानना, नाना यन्त्रालयों को बनाना, सुन्दर सुन्दर भवनों का निर्माण, उनमें सुन्दर २ यन्त्रों के निर्माण यह सब कुछ भौतिक विज्ञान से होता है। आध्यात्मिक विज्ञान से आत्मा में और प्रभु को पान करना, आत्मा में उस प्रभु की सृष्टि को जानना, प्रभुत्व को जानना यह आध्यात्मिक विज्ञान कहलाता है। इन दो प्रकार

के विज्ञानों को जानना आगे चलकरके एक विज्ञान काण्ड कहलाया जाता है। इसी प्रकार यह त्रयी विद्या है। हमारे जीवन की जितनी सुगठितता है वह सब उसी त्रयी विद्या से सुगठित रहती है, उसी से हमारा मिलान है। मानवजीवन और वैदिकवाद दो नहीं हैं वह मौलिक रूपों में एक ही माने जाते हैं। इसी प्रकार आज हमें वैदिक बनना चाहिये क्योंकि यदि हमारे हृदय में वेद का प्रकाश है, अन्तःकरण में प्रकाश है तो वही जो वेद का प्रकाश है, हमें उसको अपनाना चाहिये। वेद किसी की व्यक्तिगत सम्पदा नहीं है वह प्रत्येक प्राणीमात्र की सम्पदा है।

यह है आजका हमारा वाक्य। समय मिलेगा तो शेष चर्चायें मैं कल करूंगा। आजका वाक्य तो यहीं समाप्त करने जा रहे हैं। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम अपने जीवन को महानता की वेदी पर ले जायें,पवित्र बनायें। आज का यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। अब वेद का पाठ होगा। कल समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे।

धन्य हो।

भौतिक तथा आध्यात्मिक यज्ञ की कल्पना

[दिनांक २० अक्टूबर १९६८ को जे-१० जोर बाग रोड़ पर दिया हुआ प्रवचन]

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हरे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पुनः से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परागतों से कुछ मनोहर वेद मन्त्रों की ध्वनि के साथ हम अपनी वाणी के उद्गार प्रकट किया करते हैं क्योंकि हमारी वाणी का जो सम्बन्ध है उसका ही प्रकाशक स्वरूप है। जहां हम यह विचार-विनिमय करते चले जाते हैं कि हमारी वाणी का ही सम्बन्ध वाणी से नहीं है परन्तु प्रत्येक इन्द्रिय का सम्बन्ध उस प्रकाश से है। उसी प्रकाश से उसका मिलान है क्योंकि यदि इन्द्रियों के समीप प्रकाश नहीं होता तो इन्द्रियों में गति किसी प्रकार आ ही नहीं सकती। इन्द्रियों में जो गति है, वह जो देन है, वह मेरे प्यारे उस देव की है जो देवताओं का भी महादेव कहलाया गया है। आज हम उस परम पिता परमात्मा का गुण गान गाते चले जायें।

उस मेरे प्रभु ने इस मानव शरीर को रचा, इस ब्रह्माण्ड

की रचना की। इसमें पृथ्वी जैसे मानग गृति को उत्पन्न कर दिया जिसमें नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति होती रहती है। खाद्य और खनिज पदार्थों की इसी के द्वारा उत्पत्ति होती रहती है। आज हम उस देव का कहां तक धन्यवाद कर सकते हैं। कहां तक उसकी महिमा का गुण गान गा सकते हैं जो प्रभु हमारे जीवन का सदैव साथी बना रहता है, जो हमारे जीवन में एक महानता का दिग्दर्शन और प्रकाश देता रहता है। प्रत्येक इन्द्रिय में प्रकाश की प्रतिभा ओत-प्रोत हो करके इन्द्रिय अपना कार्य करने में सफल हो जाती हैं। इन्द्रियों का क्षेत्र एक विशालता में परिणत होता चला जाता है। तो आओ मेरे प्यारे भद्र पुरुषो ! आज हम अपने देव की याचना करते हुये यह उच्चारण करते चले जायें कि प्रभु ने जब यह संसार रचा तो उस समय यह कहा गया है कि इस सर्वस्व ब्रह्माण्ड को यज्ञ वेदी के रूप में रचा क्योंकि यज्ञ में जैसे होता जन आहुति देते रहते हैं, यजमान भी आहुति देता रहता है इसी प्रकार इस संसार को क्रियाशील बनाने में नाना प्रकार के जो होता हैं, जल, अग्नि, वायु हैं यह प्रभु के चुने हुये होता हैं, यह नित्य प्रति आहुति देते रहते हैं। परमाणुओं की आहुति देते रहते हैं। प्राणीमात्र का जीवन उन आहुतियों से प्रदीप्त होता है, प्रकाशमान होता है। इसी प्रकार हमें विचारविनिमय करना है कि प्रभु का जो दिया उत्तम मार्ग है उसको अपनाने में अपने विचारों को संकीर्ण नहीं बनाना चाहिये क्योंकि जितना द्रव्यवाद है, लक्ष्मीवाद है—लक्ष्मी अपना वही स्थान ग्रहण करती है जहां उसके पति का पूजन होता है। यदि पति का पूजन नहीं होगा तो वहां लक्ष्मी का कुछ नहीं बनेगा

क्योंकि लक्ष्मी का सदुपयोग करना यह मानव के लिये विशेष कर माना गया है।

मेरे प्यारे महानन्द जी मुझे प्रेरणा देते चले जा रहे हैं, वायुमण्डल से भी मुझे यह प्रतीत हो रहा है कि यह जो कल का आगे दिवस आ रहा है वह दिवाली का दिवस हमारे समीप आता चला जा रहा है। समय आता रहता है, जीवन की सिद्धान्तों में विचार धारा वनती रहती हैं परन्तु जहां दीपावली दिया ब्रभे कृति: दिया: मानव का जीवन प्रकाशमय होता है, मानव के मन में एक महान् क्रान्ति उत्पन्न होती है, एक नवीन क्रांति का मानव दिग्दर्शन करता है। आज जब हम यह विचार-वित्तिमय करते हैं कि एक द्रव्यपति है परन्तु द्रव्य का दुरुपयोग करता है सदुपयोग नहीं करता 'यज्ञा: मह कृति' वह यज्ञ नहीं करता, मानो अनाथों की सेवा नहीं करता, वह प्राणी केवल द्रव्य को एकत्रित करके अपने मान में परिणत होता चला जाता है तो उसका क्या बनेगा। वह समय बहुत निकट आने वाला है जब द्रव्य के दुरुपयोग करने वाले प्राणी के विनाश का समय निकट आ जाता है। मानव के विनाश का समय जब बनता है तो उसका जो द्रव्य है उसका दुरुपयोग करना मानो खान-पान में और नाना कृतियों में, भोगों में परिणत कर देना यह मानव के लिये कोई सुन्दरता नहीं है। मेरे ऋषि ने तो ऐसा कहा है, आचार्यजनों ने तो ऐसा कहा है कि द्रव्य को एकत्रित करना मानव के लिये कोई ऊंचा वाक्य नहीं है। वेद का ऋषि तो कहता है कि उसका सदुपयोग करना अपने जीवन का भी सदुपयोग करना, वाणी का, चक्षुओं का, घ्राण का, श्रोत्रों का, ग्रीवा का, उपस्थका, त्वचा का जितना भी इन्द्रियों का सदुपयोग किया जाता है उतनी ही मानव में

प्रतिभा जागृत होती चली जाती है।

मेरे भद्र पुरुषो! मैं यह उच्चारण करने नहीं आया कि द्रव्य नहीं होना चाहिये परन्तु द्रव्य के साथ मानव को अपनी मानवता समाप्त नहीं कर देना चाहिये। यदि द्रव्यकी लोलुपता में मानवता को नष्ट कर दिया तो उस द्रव्य का क्या बनेगा? एक समय वह आयेगा कि यदि उसकी मानवता उसके समीप नहीं है, विचारधारा ऊंची नहीं है तो एक समय वह द्रव्य पृथ्वी के तुल्य होता चला जायेगा। मुझे एक समय ऋषियों ने वर्णन कराते हुये कहा था, यहां तो बारम्बार चर्चायें आती रहती हैं, मैंने अभी प्रकट किया था कि जहां पति का पूजन नहीं होगा वहां लक्ष्मी भी अपना अधिक समय तक स्थान ग्रहण नहीं कर सकती। उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि लक्ष्मी का कौन देवता है? लक्ष्मी का यदि कोई पति है तो उसका नाम धर्म कहलाया गया है। जहां धर्म और लक्ष्मी दोनों का पूजन होता है वहां नाना प्रकार की सम्पत्ति और संसार की सम्पदा होती है। परन्तु सम्पदा वहीं होती है जहां धर्म और लक्ष्मी दोनों का पूजन किया जाता है। अब विचार आता है कि पूजन कैसे करें? मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे वर्णन कराते हुये भी कई समय कहा, मेरे पूज्य गुरुदेव भी मुझे स्मरण कराते रहते थे कि द्रव्य का सदुपयोग क्या है कि देवताओं को सर्व प्रथम हार्व देना लक्ष्मी का सदुपयोग माना गया है। क्या आज हम देवताओं को लक्ष्मी अर्पित करें? कदापि भी नहीं। लक्ष्मी किसे कहते हैं? द्रव्य नाम लक्ष्मी का है और जितने भी पदार्थ हैं, वनस्पतियां हैं इनमें सबमें हमें द्रव्य की प्रतिभा प्रतीत होती है। आज उन सबकी सामग्री बनाकर के आज हम अन्न के रूप में भी सामग्री बना सकते हैं,

औषधियों की भी सामग्री बना सकते हैं, नाना रूपों में, विचारों के रूपों में भी हम विचारों की सामग्री बना सकते हैं। जिस सामग्री को बनाना चाहते हो उस सामग्री को बना करके तुम देवताओं को हवि देते चले जाओ। उससे पृथक् तुम्हारे लिये कोई सदुपयोग नहीं है। देखो किसी मानव के द्वारा द्रव्य है। वह नाना प्रकार की वनस्पतियों को एकत्रित करता है और एकत्रित करके उन्हें अग्नि के अर्पित कर देता है.अग्नि देवताओं का दूत माना गया है,यह अग्नि सभी को ले करके जल अग्नि वायु को प्रसारण कर देता है और जब उन्हीं वनस्पतियों के साथ यदि सुन्दर विचार होंगे तो क्योंकि अग्नि में प्रसारण शक्ति होती है वह सबको प्रसारणकर देती है और प्रसारण करके देखो सब देवताओं को प्राप्त हो जाती है।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषो ! मैं तो यह कहा करता हूं कि हे यजमान ! जब तू अपने विचारों की आहुति देताहै,जहां शाकल्य होता है वहां विचारों का भी शाकल्य होता है वहां त्रुटियों का-भी शाकल्य होता है और उसे तू अग्नि के द्वारा अर्पित कर देता है और यह 'कहा करता है कि हे अग्नि ! तू मुझे हवि दे। मैं तुझे हवि देता हूं तू मुझे सत् मार्ग दे। इसी पर मुनिवरो जब वह अग्नि पर अपने यह विचार देता है जो देवताओं का दूत है, अग्नि सब देवताओं पर प्रसारण कर देती है तो वह जो देवता हैं वह हमारे मानव शरीर में कार्य करते हैं मानो अग्नि के रूप में हैं, कहीं जल के रूप में हैं, कहीं वायु के रूपों में, कहीं अन्तरिक्ष के रूपों में, कहीं सूर्य के रूप में, कहीं चन्द्रमा के रूप में, नाना प्रकार के नक्षत्रों के रूपों में भी हमारे मानव के शरीर में

कार्यवाहक होता रहता है। तो यह जो अग्नि देवताओं का दूत है, यह जो मानव शरीर में कार्य करते हैं वह सुचारु रूप से कार्य करते हैं और मानव की जो प्रवृत्ति है, मानव के जो विचार हैं वे देवता उसे बाध्य कर देते हैं कि तू इस काय को शुद्ध रूप से कर।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषो! आज जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि देवताओं का सम्बन्ध मानव के शरीर से माना गया है, आज हम मानव शरीर से ही नाना प्रकार की हवि देते हैं। हे यजमान! जब तू अग्नि के स्वरूप को धारण करता है, अग्नि के ऊपर तेरे नेत्रों की दृष्टि जाती है वेद का आचार्य कहता है कि तू यज्ञशाला में यजमान बनना चाहता है तो सबसे प्रथम अपने जीवन को तपा लेना चाहिये। उसे तपा कैसे लेना चाहिये ? मानो अपने विचारों को तपा लेना चाहिये। संकलन शक्ति से तपना चाहिये। उसके द्वारा संकल्प की ऐसी महान् सत्ता होनी चाहिये कि उसके साथ-साथ उसकी मानवीयता में इतनी दृढ़ता और साहस होना चाहिये कि वह हवि देने के योग्य बन जाये। मानो वह 'ब्रह्मचर्यश्यामी ब्रह्मा कृतिः ब्रह्मचर्य का भी पालन करता हुआ जब अग्नि की जिह्वा को धारण करता है कि यज्ञशाला में अग्नि की कितनी प्रकार की जिह्वा होती हैं, उन जिह्वाओं का क्या-क्या स्वरूप होता है, यजमान का जब भी मन चंचल हो उसी समय उसकी अग्नि की जिह्वा के साथ प्रवृत्ति होनी चाहिये, नेत्रों की दृष्टि होनी चाहिये क्योंकि वास्तव में जब सब ही होतागण, अग्नि की जीभ्या को धारण करते हैं तो जो नेत्रों की तरंगें होती हैं, नेत्रों के जो संकलन होते हैं, नेत्रों के द्वारा जो धर्म और अधर्म की प्रवृत्तियां हैं मानो वह जिह्वा उनको निगल लेती है और

निगल कर वह सभी देवताओं को अर्पित कर देती है। तो हे य मान ! हे होताजन ! तू ऊंचा बन और कसा ऊंचा बन ? तू पुरोहित के आधीन बन करके अपना कार्य कर। पुरोहित कौन होता है ? जो तेरे हित का हो। पुरोहित उसे नहीं कहते जो पुरोहित हो करके अपने यजमान को नाना प्रकार की विडम्बना में ले जाये ! वास्तव में हमारे यहां सबसे प्रथम कोई पुरोहित है तो उसे परमात्मा कहते हैं क्योंकि वह जो मेरा प्यारा प्रभु है वह सर्वश धर्मों का स्वामी है, जिसको धर्मज्ञ स्वरूप कहा गया है। वह जो प्यारा प्रभु है उसके द्वारा जो प्रतिभा समाई हुई है, विराजमान हो रही है उसी प्रतिभा के साथ-साथ हम उसे अपना पुरोहित स्वीकार करें। वह जो मेरा प्यारा प्रभु है वह वास्तव में हित को चाहने वाला है, हित करने वाला है। मानव का यदि कोई हितकारी है तो वह जो यथार्थ में पुरोहित है उसका नाम प्रभु माना गया है। चैतन्य देव माना गया है जो प्रत्येक मानव प्रत्येक देव कन्या के हित के लिये केवल कल्याण की कल्पना किया करता है। आज पुरोहित को अपना महान् देव चुने। वह जो मेरा प्यारा प्रभु है वह हमारे मानव के कल्याण के लिये सदैव प्रतिभा को देता रहता है। हमें अपने उस महान् देव की यात्रना करते हुये और यहां भी यज्ञशाला में ऐसा बुद्धिमान् पुरोहित चुनना चाहिये जिस पुरोहित के हृदय में पापाचार न हो केवल धर्मज्ञ और मानवीय दृष्टि से उस मानव का जीवन इस साधारण प्राणियों से उत्थानिक हुआ हो, ऐसे प्राणी को हम अपना पुरोहित चुनते हैं। वह पुरोहित यज्ञशाला में यजमान को चुनता है, ब्रह्मा को चुनता है। 'वह ब्रह्मा ब्रह्मे: अस्वान्ति ब्रह्मा' वह जो ब्रह्मा है यज्ञशाला में प्रविष्ट होने वाला उसकी

वाणी में माधुर्य, धार्मिकता और ओज का प्रतिभा होनी चाहिये उसकी वाणी में कटुता का व्यवहार नहीं होना चाहिये क्योंकि उस ब्रह्मा की जो कटुता है वह कटुता यज्ञशाला में यजमान के प्रति, होताओं के प्रति जो हिंसाजनक मानव की प्रवृत्तियां होती हैं, ब्रह्मा की होती हैं यह न जाना जाये कि मैं मानो इनकी हिंसा कर रहा हूं। अरे मानव! वह हिंसा उनकी हिंसा, होताओं की हिंसा, यजमान की हिंसा वह उस ब्रह्मा को उस वेदपाठी को स्वयं वह हिंसा उस मानव को निगलती चली जाती है।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषो! जब यज्ञशाला में ब्रह्मा हो, होता हो, उद्गाता हो और यदि उसके द्वारा द्रव्य की लोलुपता होती है, द्रव्य की प्रवृत्ति बन जाती है तो जानो कि उसका जो हृदय है, अन्तःकरण है वह उस संकीर्णता से ओत-प्रोत हो जाता है कि उसकी जो विचार धारा है वह देवताओं के समीप जाती है। हे मानव! तेरी जो वह द्रव्य की प्रवृत्ति बन चुकी है वह द्रव्य की प्रवृति किसी को नहीं खाती परन्तु वह जो तेरा आत्मिक बल है उसको वह निगलती चली जाती है और एक समय वह आता है कि द्रव्य की लोलुपता में हे ब्रह्मा! हे होताजनो! हे उद्गाताओ! तुम्हें जो वह द्रव्य की लोलुपता है वह स्वयं तुम्हें यज्ञशाला में संकीर्ण बना देती है, आत्मा के बल को ऐसे शोषण कर लेती है जैसे ग्रीष्म की सुन्दर ऋतु में सूर्य की किरणें जल को अपने में शोषण कर लिया करती हैं। यहां महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बड़े सुन्दर शब्दार्थों में कहा है कि 'यज्ञाम् ध्रुवाः ब्रह्मेः यज्ञम् ब्रह्मे व्याप्नोति नाभ्याम् ऋषवन्ते रुद्राः' वेद का आचार्य कहता है, महर्षि ने कहा है कि यदि आज हम संसार की नाभि को दृष्टिपात

करना चाहते हैं तो यज्ञ वेदी है और वह यज्ञवेदी क्या है ? जब ब्रह्मा के विचारों का और नाना प्रकार के पदार्थों का, वेद मन्त्रों के विचारों का एक समावेश हो जाता है तो वह एक प्रकार से ब्रह्माण्ड की नाभि मानी गई है। आज हम उस नाभि को विचारने वाले बनें जिससे हमारे मानसिक जीवन में एक महान् प्रतिभा ओत-प्रोत होती चली जाये। इस जीवन को ऊंचा बनाने में सदैव तत्पर होते चले जायें।

मेरे प्यारे भद्र पुरुषो ! आज हम वाक्य उच्चारण करते-करते वहुत दूरी चले गये। वाक्य यह प्रारम्भ करना था कि यज्ञशाला में प्रविष्ट होने वाले 'यज्ञमानः प्रभा कृति' आज तो मैं यह कहा करता हूं कि जो मानव अपने द्रव्य का सदुपयोग करता है, देवताओं को अर्पित करता हैं, यज्ञशाला में अर्पित कर देता है तो वह बड़ा सौभाग्यशाली प्राणी होता है संसार में क्योंकि उस मानव के लिये एक ऊंचा स्थान प्राप्त हो जाता है, द्रव्य की दृष्टि से लक्ष्मी के आंगन में परन्तु जो लक्ष्मी को नाना प्रकार के दुर्गन्धों में, मादक वस्तुओं में द्रव्य को नष्ट करता चला जाता है और उसे कर्त्तव्यवाद में नहीं लाता तो उस मानव की प्रतिभा नष्ट-भ्रष्ट हो जाया करती है। हम यजमान की प्रतिभा के लिये सदैव याचना करते रहते हैं और यह कहा करते हैं कि हे यजमान ! तू संसार में प्रतिभाशाली बन। कैसी तेरी प्रतिभा होनी चाहिये ? तेरा प्रकाश केवल तेरे मन की शुद्धता तक रहना चाहिये। जब तेरे मनों में शुद्ध वातावरण होगा, मानवीय संकलन ऊंचा होगा तो मानो देखो यह प्रसारण शक्ति, व्यापकता और धर्म तेरे निकट होगा और वह जो धर्म है वह लक्ष्मी के साथ उसका समावेश हो करके वहीं लक्ष्मी धर्म में प्रवृत्त हो करके मानव

को उन्नत बनाती चली जाती है। जब उन्नत बना देती है तो वह जो आत्मा का उत्थान है वह देवताओं तक पहुँचा करता है और देवताजन उसे ग्रहण करके संसार की प्रत्येक सम्पत्ति उसके निकट आ जाती है। वेद का ऋषि कहता है, वेद में सूत्र के सूत्र आते हैं कि यज्ञ के सम्बन्ध में हम जितना भी विचार दे सकें उतना सूक्ष्मत्व माना गया है। वास्तव में हम अपने जीवन को ऊंचा बनाने के लिये सदैव यज्ञ करें। यज्ञ कर्मों में हमारी प्रवृत्ति होनी चाहिये।

यह तो बेटा ! मैंने एक भौतिक यज्ञ की कल्पना की है अब आध्यात्मिक यज्ञ की कल्पना कर लो। जब आध्यात्मिक यज्ञ की कल्पना करते हैं तो मुनिवरो ! सबसे प्रथम यह जो पांचों विषय होते हैं:—काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह इत्यादि इन की सामग्री बनाई जाती है और सामग्री बनाकरके इसको मन के भुज बना करके और बुद्धि, चित्त और अहंकार इनका भी समावेश उसके साथ हो जाता है तो वह जो ज्ञान रूपी वेदी है, ज्ञान रूपी अग्नि है उसमें अपनी सब प्रवृतियोंकी सामग्री बनाकरके उसमें स्वाहा देना है,आहुति देनी है। वह आहुति कैसे दी जायेगी ? महर्षि पतञ्जलि जी ने कहाहै,महर्षिपतञ्जलिजी ने ही नहीं यहां रेवक जैसे ऋषियों ने पिप्पलाद जी ने भी, प्रजापतिजी ने भी ऐसा ही कहा है। जिस समय प्रजापति के आश्रममें महाराजा विरोचन और महाराजा इन्द्र पहुँचे तो विरोचन तो प्रथम ही उपदेश ही लेकर चले आये परन्तु इन्द्र ने एक सौ एक वर्ष की तपस्या की। तपस्या क्या होती है? अपनी नाना प्रकार की जो प्रवृतियां हैं, नाना प्रकार की जो दुर्गन्धियां हैं उन सबकी हवि बनाकरके ज्ञानरूपी यज्ञशाला में सबको दग्ध करके जब गुरु के समीप

समिधा लेकरके आते हैं:—

हमारे यहां परम्परा यह मानी गई है कि जब गुरु-आचार्य के समीप शिष्य जाता है तो उस समय तीन समिधा ले जाता है। वह कहता है कि हे आचार्य ! मैं तीन समिधा लेकर के आपके द्वार आयाहूं। जब मैं यजमान बनकरके यज्ञशालाके समीप जाता हूँ, होता बनकरके उस समय भी मैं तीन समिधा लेकरके अग्नि के समीप जाता हूं, इसी प्रकार भगवन् ! मैं आपको भी अग्निस्वरूप ही धारण कर चुका हूं। मेरे मन में संकलन हो चुका है कि आप मेरे अग्नि देवता हैं, यज्ञस्वरूप हैं प्रभु ! मेरे जो तीन प्रकार के पाप-मन वचन और कर्म से मैं जो पाप करता हूं उन्हें तीन समिधाओं के द्वारा दग्ध कर दीजिये। तो मुनिवरो ! जब महाराजा इन्द्र इन तीन समिधाओं को लेकर पहुंचे तो प्रजापति से यही कहा कि मेरे जो नाना प्रकार के पापाचार हैं उनको दग्ध कर दीजिये। तो एक सौ एक वर्ष की तपस्या करने के पश्चात् उन्होंने एक ही उपदेश दिया था कि इस आत्मा को जानने का प्रयास करो। यह जो आत्मा है यह ज्ञान स्वरूप है और ज्ञान स्वरूप होने के नाते नाना प्रकार की जो प्रवृतियां हैं जो तुम्हें सुषुप्ति अवस्था में, स्वप्न अवस्था में, जागृत् अवस्था में जो नाना प्रकार की प्रवृतियाँ जब तुम बाह्य जगत् को दृष्टिपात करते—बाह्य जगत् की जो प्रवृत्तियां हैं उनको समेट लो, इन्द्रियों को समेट करके मन में स्थिर कर दो और मन को बुद्धि में स्थित कर दो और मन को अन्तःकरण में स्थिर कर दो। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का नाम अन्तःकरण कहलाया गया है। इन तीनों की सबकी जब एक धारा बन जाती है, जब सब प्रवृत्तियां चित्त में लय हो जाती हैं और चित्त में जो सामग्री एकत्रित हो गई है उसकी बेटा !

ज्ञान रूपी अग्नि जो आत्मा स्वरूप है उसमें आहुति देना है और आहुति देकरके प्रभु से मिलान करना है। वह मानव का आन्तरिक यज्ञ कहलाया गया है। आज हमें इस यज्ञ को करना है जिस यज्ञ के करने से हमारे मन की प्रवृतियां विशाल बनती हैं। हम संकीर्णता में नहीं जाते और उस स्थान पर चले जाते हैं जहां हमारे महान् ऋषिवर ब्रह्मा आदि पहुंच चुके हैं। उसके लिये हमें सुन्दर कल्पना करनी है।

आज हम यहां आन्तरिक यज्ञ कर सकते हैं। एक विचारों का यज्ञ होता है। विचारों का यज्ञ कैसे होता है ? हम अपने विचारों को बनाते हैं, अपने विचारों का शोधन करते हैं मानो किसी समाज में जाकरके, किसी महापुरुष के सम्पर्क में जा करके, किसी स्थान में जा करके विचारों का संशोधन करते हैं। विचारों में सुन्दरता लाते हैं, विचारों में हिंसा नहीं रहने देते, अहिंसा परमोधर्म का पालन करने में तत्पर हो जाते हैं, उन विचारों की सामग्री बनाते हैं और सामग्री बनाकरके और वह जो विचार रूपी यज्ञ वेदी है—विचार की यज्ञ वेदी क्या है ? सत्महापुरुषों का सत्संग। सत्महापुरुषों की प्रवृत्तियाँ, उनकी धाराएं, उनके मध्य में उन विचारों को व्यक्त कर दो, विचारों से ही वह महापुरुष तुम्हारे विचार अपने विचारों को देकरके शोधन कर दिया करते हैं—वह एक प्रकार की यज्ञ वेदी है जहां महापुरुषों का समूह हो। उसके जो विचार हैं, उसकी जो धारा है, अपने विचार हैं उनमें जहां संशोधन किया जाता है वह एक प्रकार की विचारों की वेदी कहलाई गई है और वह जो विचारों की वेदी है, उस सुन्दर यज्ञशाला में जिस का सम्बन्ध भी ज्ञान रूपी अग्नि से है और ज्ञान रूपी अग्नि से जब मानव अपनी प्रवृतियों का स्वाहा कर देता है उस

समय उस मानव के जीवन में एक महान् प्रतिभा छा जाती है और प्रतिभा उस मानव की ध्रुवा गति नहीं होने देती ऊर्ध्वा गति बना करके विचारों में व्यापकता, प्रसारणता और आकुंचन यह सब प्रकृति के गुण आकरके, प्रकृति के कण कण को जान करके वह महान् बन जाता है। और अपना प्रदर्शन करके इस संसार सागर से वह मानव पार हो जाता है।

यह है आज का हमारा वाक्य ! आज मैं कोई अधिक चर्चा करने नहीं जा रहा हूं। हमारे यहां कई प्रकार के यज्ञ होते हैं— विचारों का यज्ञ होता है, आन्तरिक यज्ञ होता है और नाना संकल्प वाले यज्ञ होते हैं और उनमें भी नाना प्रकार के भेद हैं। उनमें गौ नाम का यज्ञ है, अजामेध नाम का यज्ञ है, अश्व-मेध नाम का यज्ञ है, जिसका वर्णन हम कल प्रकट कर सकेंगे। आज इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। आज के हमारे वाक्यों का अभिप्राय क्या है कि हम मन, वचन और कर्म को ऊंचा बनायें। मन, वचन, कर्म, इनसे पाप वासना हम न आने दें यही हमारा जीवन है। इसी में हमारे जीवन की जो एक महान् प्रतिभा है, एक महान् धारा है उसको अपनाने में हम सदैव तत्पर होते चले जायें। इसी से हमारे जीवन का उत्थान होगा। यदि हम अपने जीवन का उत्थान चाहते हैं तो। वाक् का प्रारम्भ यह चल रहा था कि द्रव्य भी कई प्रकार का होता है। एक द्रव्य तो लक्ष्मी का होता है, दूसरा विद्या का होता है और तीसरी सम्पदा उसके द्वारा शारीरिक बल की होती है। नाना प्रकार की जो सम्पदा है यह सब सम्पदा कह-लाती है। न तो बुद्धि का दुरुपयोग होने दो, न बल का दुरुप-योग होना चाहिये। और न लक्ष्मी का दुरुपयोग होना चाहिये।

जब तीनों का दुरुपयोग नहीं होगा तो मानव के जीवन में मानवता के विशेष २ अंकुर ओत-प्रोत होते चले जायेंगे।

एक मानव को परम पिता परमात्मा ने उसके संस्कारों में बुद्धि दी है और बुद्धि का दुरुपयोग करता है। बुद्धि के द्वारा ऐसे अनुचित कार्य करता है कि वह साधारण प्राणियों को कुदृष्टिपात करता है तो वह जो बुद्धि का दुरुपयोग है उसे नहीं करना चाहिये। बुद्धिका कार्य यह है कि यदि परमात्मा ने बुद्धि दी है, दैविक सम्पदा है तो उसमें स्वयं को ऊंचा बनना है, स्वयं को बुद्धिमान रहना है और दूसरोंको बुद्धिमान बनाना है। यह बुद्धि का सदुपयोग कहलाया जाता है। यदि बुद्धि हमारे द्वारा है और बुद्धि का दुरुपयोग है और आज पद की लोलुपता में, पद के आंगन में साधारण प्राणियों को अपने पगों के नीचे दबाना चाहते हैं और ऊंचा बनना चाहते हैं तो यह परमात्मा की दृष्टि में और धर्म की दृष्टि में यह बुद्धि का दुरुपयोग कहलाया गया है। इसी प्रकार यदि मानव के समीप शारीरिक बल है और शारीरिक बल से नाना प्रकार के अनुचित कार्य करता रहता है,न तो चरित्र का ही विचार रहता है और किसी प्राणी को अपने भुजबल से वह नष्ट करने की प्रवृत्ति उसमें आती है यह प्रवृत्ति नहीं आनी चाहिये। यह उसका दुरुपयोग है। आज जिन कारणों से उसको प्रभु की सम्पदा वह बल प्राप्त हुआ है उस बल का दूसरों को उपदेश देना, स्वयं वलवान् बनना, स्वयं अपने स्तर से नीचे न जाना और आगे चलकरके जब वह प्राणी चलता है तो उसके जीवन में एक महान् प्रतिभा ओत-प्रोत होकरके उसके बल का सदुपयोग माना गया है।

इसी प्रकार मैंने द्रव्य की चर्चायें की हैं। द्रव्य का भी

सदुपयोग करना। द्रव्य परमात्मा ने दिया है। पुरुषार्थ का फल है। स्वयं को द्रव्यपति बनना है, दूसरे अनाथों की सेवा करना, यज्ञ इत्यादि करना और भी नाना कार्य करना जितना भी हम परोपकार स्वीकार करतेहैं इसी सबका नाम यज्ञस्वरूप माना गया है। कल चर्चा प्रगट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त होता गया हैं कि आज हम किसी वस्तु का दुरुपयोग न होने दें। स्वयं उसके अधिकारी बनें, विचारशील बनें और जो इन को व्यर्थ में ही समाप्त कर देता है वह इनका अधिकारी नहीं होता इसलिये प्रभु का चिन्तन करते हुये, धर्म को जानते हुये—धर्म के साथ लक्ष्मी है, धर्म के साथ बुद्धि है, धर्म के साथ बल है। यदि इन तीनों के साथ में धर्म नहीं है तो इनका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। कल मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे। आज का यह वाक्य समाप्त होता गया। आजके वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम अपने जीवन को यज्ञस्वरूप बनायें और प्रतिभाशाली बनाकरके यह जो प्रभु का रचाया हुआ ब्रह्माण्ड है, अलौकिक ब्रह्माण्ड है, अलौकिक ही प्रभु है हमें उसकी महिमा का गुण गान गाना, प्रभु का चिन्तन करना, इससे हमारा जीवन ऊंचा बनेगा। हम समाज के जीवन को ऊंचा बना सकेंगे। अब वेदों का पाठ होगा। शेष चर्चायें कल प्रगट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त होता गया।

धन्य हो!

गुरुदेव ! वाक्य तो बहुत सुन्दर परन्तु समय की सूक्ष्मता (हास्य) बेटा ! कल समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल होंगी ।

अच्छा भगवन् ! तो भगवन् ! कुछ सूक्ष्म सा समय प्रदान कर देना ।

अच्छा बेटा ! कल का कल देखा जायेगा ।

तो मुनिवरो ! आजका वाक्य समाप्त होता गया । समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे ।

मुक्ति के लिए साधना करो

प्राक्कथन पूज्य स्वामी योगेश्वरानन्द जी द्वारा

दिनांक ११-४-६९ को योग निकेतन
ऋषिकेश में दिया हुआ प्रवचन ।

आकाश में विचरती हुई महर्षि शृंगी जी महाराज की आत्मा से आज मैं पूछना चाहता हूँ कि सब संसार के लोग जो ईश्वर को मानने वाले हैं वह कहते हैं कि सृष्टि का कर्त्ता ईश्वर है। मैं आज अन्त में आकरके इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि जैसे मैं यह कर्म कर रहा हूं बोलना चालना आदि मेरे शरीर के द्वारा यह कर्म हो रहा है,वाणी बोल रही है, तो यदि हम ईश्वर को इस प्रकार कर्त्ता मानते हैं,तो उसको भोक्ता भी मानना पड़ेगा, क्योंकि जहां कर्तृत्व धर्म है वहां भोक्तृत्व धर्म भी होना चाहिये। और यह जो धर्म है, जिस पदार्थ के अन्दर परिणाम कर्म पैदा होगा, उस पदार्थ में ही धर्मों का क्रमपूर्वक प्रादुर्भाव होगा। तो ऐसी परिस्थिति में ईश्वर भी विकारी बन जाता है। जैसा कि मैं विकारी बन जाता हूँ, अनेक पाप कर्म करने लगता हूं, अच्छे कर्म भी करने लगता हूं, किसी के साथ भला बुरा भी कर सकता हूँ। तो यदि हम ईश्वर को कर्त्ता मानते हैं तो भोक्ता भी मानना पड़ेगा। यह बात समझ में नहीं आती है कि वह कर्त्ता तो हो, परन्तु भोक्ता न हो। और फिर कभी २ उसे निष्क्रिय, निर्भय

भी कहते हैं। तो यह दोनों प्रकार के विरुद्ध धर्म, निष्क्रिय भी हो, निर्भय भी हो, सर्वव्यापक भी हो। और फिर कर्त्ता भी हो, दयावान भी हो, अनेक गुणों का जो उसमें वर्णन किया जाता है। आया कि यह आरोप मात्र से गुणों का वर्णन है कि वास्तविक गुणों का प्रादुर्भाव उस ब्रह्म में होता है। यदि गुणों का प्रादुर्भाव ईश्वर में होता है तो जैसे मेरा अन्तःकरण विकारवान है, इसमें अनेक गुणों का प्रादुर्भाव होता है, इसी प्रकार भगवान् का भी कोई अन्तःकरण मानना होगा जिसमें कि गुणों का प्रादुर्भाव हो। यदि कहा जाये कि भगवान् सर्व-व्यापक है उसको किसी अन्तःकरण की आवश्यकता नहीं, तो जब वह सर्वव्यापक है तो किसी देश विशेष में किसी गुण के प्रादुर्भाव होने की भी आवश्यकता नहीं। एक देशीय जो हो उसमें तो गुणों का प्रादुर्भाव हो सकता है, सर्वदेशीय में गुणों की बात बनती ही नहीं। जो जब हम ईश्वर को निर्गुण कहते हैं और सगुण, तो यह दोनों विरुद्ध धर्म एक पदार्थ में हो नहीं सकते कि सगुण भी हो और निर्गुण भी हो। या तो उस को निर्गुण ही मानना पड़ेगा या उसको सगुण ही मानना होगा। निर्गुण मानने पर यह हम केवल सांनिध्य मात्र से प्रकृति में क्रिया, व्यापार कर्म होने लगता है और प्रकृति संसार का सृजन करने लगती है, जैसे कि मेरे शरीर में जीवात्मा का सम्बन्ध है। और जब तक सम्बन्ध बना हुआ है तबतक अन्तः-करण शरीर आदि सारे व्यापार करता रहता है, सब कुछ उछलना, कूदना, चलना, फिरना, खाना पीना यह सब व्यवहार बने रहते हैं। जब जीवात्मा का सम्बन्ध शरीर से छूट जाता है, तो यह शरीर कुछ भी नहीं करता। तो कर्तृत्व धर्म आदि क्यों न इसी शरीर के माने जायें। आत्मा को क्यों न निष्क्रिय

और अकर्त्ता माना जाये। केवल साँनिध्य मात्र से ही व्यापार हो सकता है। भगवान् के सांनिध्य मात्र से ही सृष्टि की उत्पत्ति हो सकती है। इसलिये भगवान् को कर्त्ता मानने की आवश्यकता नहीं। और किसी भी गुण के मानने की जरूरत नहीं। निर्गुण होने से सर्वव्यापकता उसका कोई गुण नहीं है। सूक्ष्मता भी उसका कोई गुण नहीं है। चैतन्यता भी उसका गुण नहीं है। वह चैतन्य है। चिति संज्ञाने;धातु से चेतन शब्द की सिद्धि होती है चैतन्यत्वेन सूक्ष्मत्वेन सर्वव्यापकत्वेन तो उसको चैतन्यता जो हैं सूक्ष्म है और सर्वव्यापकता सबसे सूक्ष्म है। तो सबसे सूक्ष्म होने से, उसके साँनिध्य मात्र से व्याप्य-व्यापक भाव सम्बन्ध से, प्रकृति स्वयं ही संसार का सृजन करती रहेगी।

भगवान् को कर्त्ता मानने की आवश्यकता ही नहीं। तो आज हम चाहते हैं कि महानन्द के द्वारा इस पर प्रकाश डाला जाये कि वास्तविकता क्या है। अब बात यह है कि शंका समाधान तो हम इनसे कर नहीं कर सकते, क्योंकि अपनी इच्छा से जो इनकी भावना होंगी वह बोलेंगे, या जैसा अगर कोई सामने बातचीत करने वाला हो, तो उसके साथ तो वाद विवाद करके समाधानभी किया जासकता है पर उसका निर्गुणत्व सिद्ध करने के लिये और सारे जितने भी धर्म हैं उनको न माना जाये,केवल निर्गुण निष्क्रिय निर्भय उसको सिद्ध किया जाये, और फिर संसार का सृजन बताया जाये, ताकि यह जो बहुत गुण मानने वाले हैं इन सभी गुणों का सर्वथा खण्डन किया जाये। और यदि माना जाये, तो अध्यारोप केवल आरोपमात्र से। तो आज इस विषय पर सुनना चाहते हैं कि आदि सृष्टि में संसार का सृजन किस प्रकार प्रारम्भ हुआ। क्योंकि हम ईश्वर को कर्त्ता

तो मानते ही नहीं हैं तो मैं तो नित्य सम्बन्ध होने से, जैसे हम रात्रि को सो जाते हैं, एक सुषुप्ति अवस्था होती है ऐसे ही प्रलय काल की अवस्था भी ब्रह्म के साथ में प्रकृति का सूक्ष्म सम्बन्ध बना रहता है। वहां भी सूक्ष्म गति क्रिया वर्त्तमान रहती है, क्योंकि चैतन्य का नित्य सम्बन्ध है। जैसे जीवात्मा का जब तक शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है, इसमें क्रिया बनी रहती है, व्यापार बना रहता और यह कर्त्ता भोक्ता आदि यह सब इसकी माननी पड़ती हैं। इसी प्रकार प्रकृति के साथ नित्य सम्बन्ध होने से प्रकृति में भी कर्तृत्व धर्म आदि उत्पन्न हो जाताहै जैसे शरीर में होजाते हैं। परमात्मा निर्गुण निष्क्रिय ही बना रहता है। तो मुझे आशा है कि मेरे विचार, मेरी भावना इनके अन्तःकरण में और इनके गुरुजनों के अन्तःकरणों में पहुंची होगी। और अब मैं सामने भी पहूँचाता रहूंगा तो आज देखेंगे कि किस प्रकार का यह प्रकाश डालते हैं इस विषय पर।

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी द्वारा प्रवचन

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां नित्य प्रति कुछ मनोहर उस वेद वाणी का प्रसार होता रहता है जो अमृत है, जिसको पान करने के पश्चात् मानव का जीवन भी अमृत बन जाता है। हम उस वेद वाणी कल्याण मयी आनन्द का प्रसारण करने वाली उस महानता को हम पान करते जायें क्योंकि हमारा जीवन सदैव प्रकाश से सुगठित रहता है। और वेद

नाम प्रकाश को माना है क्योंकि वह अनुपम प्रकाश है जो मानव के अन्तःकरण को प्रकाशमान बनाने वाला है। हम जब यह विचारविनिमय करने लगते हैं कि हमारा जीवन वास्तव में प्रकाश से सुगठित रहता है। हमारे जीवन में एक महान् ज्योति सदैव जागरूक रहती है जिससे मानव का जीवन सदैव प्रकाशमान प्रतीत होने लगता है। तो आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम उस परमपिता परमात्मा का गुण गान गाते चले जांये जिसके प्रकाश में हम सदैव प्रकाश मान हैं क्योंकि हमारा जीवन प्रकाश से सुगठित रहता है। हमारे जीवन की एक महानता उस प्रकाश से ही प्रतीत होने लगती है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! आज हम अपने उस प्यारे प्रभु का गुण गान गाते चले जायें जिस प्यारे प्रभु ने इस जगत् को रचा है, जो हमें दृष्टिपात आता चला जारहा है। हमारे यहां ऋषि मुनियों के जो सुन्दर विचार हैं उनके ऊपर हमें सदैव विचारविनिमय करना,उन वाक्यों पर अनुसन्धान करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार होता है। सदैव उन पर विचारविनिमय करना ही चाहिये।

मेरे प्यारे महानन्द जी यह कहा करते हैं, आज भी मुझे इनका कुछ संकेत प्राप्त होता चला जा रहा है परन्तु वह जो संकेत है उसका उत्तर मैंने कई काल में अपने वाक्यों में और कुछ विचारधाराएं कई काल में दी हैं। आजभी समय आयेगा मैं इनका संक्षिप्त उत्तर दूंगा। परन्तु आजका मेरे प्यारे महानन्द जी का एक द्वितीय वाक्य और भी है जिसको हम सभी को विचारविनिमय करना है। हमारे यहां परम्परागतों से आदि ब्रह्मा से लेकर के, और वर्त्तमान काल का तो इतना प्रतीत नहीं है, परन्तु समय आता रहा, प्रत्येक मानव, प्रत्येक

मेरा प्यारा ऋषि मण्डल विचारविनिमय करता चला आया अपने मन की परिस्थिति को विचारविनिमय करने के लिये। प्रत्येक मानव मन के ऊपर अनुसन्धान करता रहता है, बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है। जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में जाता तो मैं यह दृष्टिपात करता रहता था कि एक पंक्ति में शिष्यगण विराजमान हो जाते और द्वितीय पंक्ति में मेरी पवित्र माताएं और तृतीय पंक्ति में मार्ग के मृगराज आते चरणों में ओत-प्रोत हो जाते। एक समय मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा प्रभु! यह क्या कारण हैं जो हिंसक प्राणी आपके चरणों को छूते हैं, नमस्कार करते हैं। उस समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक बहुत सुन्दर उत्तर दिया कि मानव जब विचारों के क्षेत्र में चला जाता है और वह विचार अहिंसा परमोधर्म से सने हुये होते हैं। जब वह विचार अहिंसा परमोधर्म से सने हुये होते हैं तो उनमें इस प्रकार का मानव का परमाणुवाद विचार इस प्रकार के बन जाते हैं कि उसके हृदय में, उसके एक परमाणु में भी हिंसक भाव नहीं रहते और जब हिंसक भाव नहीं रहता तो हिंसक जो प्राणी होते हैं वह परमाणु उनके अन्तःकरण को छूआ करते हैं। उनकी अन्तरात्मा को छूते हैं। उनका जो हिंसक भाव है वह समाप्त हो जाता है और वह अहिंसा परमो धर्म का पालन करने के लिये तत्पर हो जाते हैं। तो विचार क्या? कि मानव का जो विचार है, मानव के हृदय के जो संकलन हैं वह इस प्रकार के होते हैं कि हिंसक प्राणी भी अहिंसा परमो धर्म का पालन करने के लिये तत्पर हो जाते हैं।

एक समय महर्षि भृगु के आश्रम में ऐसा ही हुआ कि जब महर्षि दालभ्य जी और रेवक और गार्हपथ इत्यादि ऋषिवर

जब उनके समीप पहुंचे तो वहां केवल जटा-पाठ के ऊपर एक प्रश्न उत्पन्न हो रहा था, ऋषियों के मस्तिष्क में, कि यह जो जटा-पाठहै इसमें ऋत है अथवा नहीं। इसमें जब महर्षि भृगुजी ने वेदोंका पठन-पाठन आरम्भ किया तो मार्गसे मृगराजभी आने लगे। तो उस समय महर्षि दालभ्य जी ने कहा प्रभु! यह क्या कारण हैं? उन्होंने कहा कि उद्गम् विचारं प्रभा अस्ति सुप्रजा:' यह जो हमारे उद्गम् विचार हैं,अन्त:करण में जितनी उत्तमता होती है, महानता होती है उतना ही वायु मण्डल में भी महानता होती है और जब मायुमण्डल में महानता होती है तो उस वायुमण्डल में हिंसक हिंसक नहीं रहता। मैं इस सम्वन्ध में अधिक चर्चा प्रकट नहीं करूंगा। केवल वाक्य यह उच्चारण करना है कि प्रत्येक मानव परम्परा से मन के ऊपर टिप्पणी करता चला आया है, मैं भी किया करता हूं। जब मेरे प्यारे महानन्दजी किसी काल में,अपवाद में आजाते हैं मानो इन के विचार उग्रित होने लगते हैं तो मुझे भी उनके उच्चारण करने का कुछ सौभाग्य प्राप्त होता रहता है समय समय पर।

आज मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी मन के ऊपर वाध्य करते चले जा रहे हैं। मैंने वहुत पूर्व काल में योगिक परिक्रियाओं का वर्णन करते हुये कहा था कि आज प्रत्येक मानव योग की घोषणा करता रहता है, परमात्माओं से करता चला आया है। मुझे स्मरण है, आदि ब्रह्मा ने योग को किस प्रकार जाना है, आदि शिव ने योग को किस प्रकार जाना है। परन्तु इसे उच्चारण करने की मुझे आवश्यकता नहीं है। मुझे एक वाक्य स्मरण आता रहता है कि यहां तक कि योग में जो शब्दों की रचना है वह भी हमारे ऋषि मुनियों ने योग के द्वारा ही उत्पन्न की है। क्योंकि जब शब्दों की रचना होती है और

प्रारम्भ में जब बाल्यकाल में शिक्षार्थी शिक्षालय में जाता है तो प्रारम्भिक शब्दों का अभ्यास कराते हैं। जब हमारे सम्मुख यह प्रश्न आता है कि इन शब्दों की रचना क्या है, इनकी अद्भुतता क्या है तो हमें ऋषि मुनियों से प्राप्त होती है कि सृष्टि के आदि में ब्रह्मा ने योग के द्वारा ही जो ब्रह्मरन्ध्र में नाद होता है, उसकी जो ध्वनि होती है, उन ध्वनियों से शब्दों की रचना होती है। मैं इस सम्बन्ध में भी अधिक चर्चा प्रकट नहीं करूंगा क्योंकि मैं केवल संक्षिप्त परिचय देता चला जा रहा हूं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है कि ब्रह्मरन्ध्र में इनकी रचना कैसे होती है, उस ध्वनि को कैसे जाना जाता है। इस पर बहुत विचारविनिमय करने की आवश्यकता है, अध्ययन की आवश्यकता नहीं, जितनी विचार की आवश्यकता होती है और जितनी अनुभव की आवश्यकता होती है।

तो विचार आया कि इनकी रचना कसे ? मानो जब प्राणों का संघात किया जाता है, प्राणों की एकाग्र प्रकृति हो जाती है उस समय मानव के मन की जो गति है, मन की जो साम्य अवस्था है मानो वह उन प्राणों के साथ में ब्रह्मरन्ध्र में जब साम्य गति को प्राप्त होता है तो ब्रह्मरन्ध्र में एक चक्र होता है। मेरे प्यारे ऋषियों ने तो ऐसा कहा है कि उस ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रों इस प्रकार की वाहक नाड़ियां हैं जिनका सम्बन्ध नाना लोक लोकान्तरों से होता है। इसीलिये योगी को कहते हैं कि सर्वंश ब्रह्माण्ड की वार्त्ता जानता है, क्योंकि वह जो नाड़ियां होती हैं, ब्रह्मरन्द्र में उनके द्वारा जब यह मन और प्राण,दोनों का संघात होता है, दोनों की अग्रित गति होती है उस समय जो नाना प्रकार की ज्ञानवाहक नाड़ियां होती हैं

देखो जिसको व्यान प्राण कहते हैं, व्यान की अभ्युक्त गति होने के नाते वह जो वाहक नाड़ियां हैं उनका मुख ऊपरी विभाग में अर्पित हो जाता है। मानो नाना प्रकारके लोक लोकान्तरों की वार्त्ता वह एक महान् योगी जान जाता है क्योंकि वह जो नाना प्रकार की नस नाड़ियां हैं,नाना सूक्ष्म २ वाहक नाड़ियां होती हैं उनको नाडियां कहतेहैं क्योंकि नाड़ियोंका तो स्थूल स्वरूप होता है उनमें से जो विचित्र धारायें होती हैं जिनमें ज्ञान की उत्पत्ति होती है, ज्ञान की धारायें रमण करती रहती हैं। तो मन और प्राण दोनोंको ही विचारविनिमय करना हमारे ऋषि मुनियों ने बहुत सुन्दर रूपों से इसका निरूपण करते हुये कहा है। महर्षि कपिल के शब्दार्थों में मैं अपने कुछ विचार प्रकट करना चाहता रहता हूं। किसी किसी काल में आर्य ब्रह्मा के विचार भी जब सम्मुख आने लगते हैं योग के सम्बन्ध में तो नाना प्रकार की क्रियायें उत्पन्न होने लगती हैं।

मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से एक वाक्य कहा था, आज नहीं बेटा! बहुत काल हो गया है जब मैंने उनके चरणों में ओत-प्रोत होकर के एक वाक्य कहा था कि प्रभु! यह जो 'हृदयां ब्रह्म आकृति रुद्रां अभ्या वसु सन्धनं ब्रह्म विचकृती आकाशं भवे अस्ति व्यायं भवनस्तम्' ऐसा हमने एक वाक्य अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा था कि भगवन्! यह जो अन्तरिक्ष हमें प्रतीत हो रहा है क्या यह अन्तरिक्ष मानव के हृदय में भी विराजमान होताहै। उस समय पूज्य गुरुदेव ने कहा कि यह हृदय मेंभी है क्योंकि यह (शरीर) तो इसीका एक सूक्ष्म रूपहै। जैसा यह ब्रह्माण्ड है ऐसा ही हमारा यह पिंड कहलाया गया है। इस पिंड में भी जैसे इस लोक में साम्य गति हो रही है और अन्तरिक्ष अपना कार्य कर रहा है, नाना प्रकार के

परमाणु भ्रमण कर रहे हैं इसी प्रकार हमारे इस मानव शरीर में भी अन्तरिक्ष होता है, आकाश होता है क्योंकि यदि इसमें अन्तरिक्ष नहीं होगा तो मानव कोई वाक्य उच्चारण ही नहीं कर सकता तो बेटा! मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा नहीं करूंगा। केवल वाक्य यह कि मैं इसका सूक्ष्म सा एक उत्तर देता चला जा रहा हूँ क्योंकि तुम्हारे प्रश्न बहुत हैं।

आगे मैं महर्षि कपिल जी की चर्चा उच्चारण करता चला जा रहा था। बेटा! जब महर्षि कपिल जी महाराज अपने आसन पर विराजमान होते थे तो नाना प्रकार की चर्चा उनके मस्तिष्क में आती रहती थी। अध्ययन करते रहते, विचार विनिमय करते रहते और अपनी आत्मा का सन्निधान करते रहते, मन के ऊपर विचारधारा प्रारम्भ होती रहती थी। **एक समय महर्षि के मन में यह उत्पन्न हो गया कि संसार में ईश्वर कोई वस्तु नहीं है।** ऋषि के मन जब यह एक आशंका आ गई तो नाना ऋषिवर उनके समीप आये। महर्षि जैमिनि जी ने कहा कि महाराज! आपके मन में यह क्या विचार आया। तो महर्षि कपिल जी ने कहा कि जो मेरे मन में विचार आया है वह स्पष्ट है क्योंकि उसके ऊपर मैं टिप्पणी कर सकता हूँ। तो ऋषियों ने कहा कि महाराज! इस मानव जीवन का विकास कैसे हुआ? यह मानव जीवन है, क्या यदि तुम इसमें कोई वस्तु स्वीकार नहीं कर रहे हो?

महर्षि कपिलजी ने कहा कि यह जो मानवका शरीर है, इस मानवके शरीरमें दो प्रकारकी प्रगति होती रहतीहैं जिसको ज्ञान और प्रयत्न कहते हैं। ज्ञान और प्रयत्न दोनों का ही यह महान् विराट स्वरूप प्रतीत हो रहा है। यह जो ब्रह्माण्ड है इस

ब्रह्माण्ड में भी ज्ञान और प्रयत्न ही मुझे प्रतीत हो रहा है। जब महर्षि कपिलजी के इस प्रकारके विचार आये तो महर्षि जैमिनि जी, महर्षि शाण्डल्यजी आदि ऋषियोंका समूह उनकेसमीप आया, जिसमें महर्षि पन्पेतु ऋषि महाराज, सोमधुक आदि ऋषियों का समाज उनके समीप विराजमान ही गया। उन्होंने कहा कि प्रभु ! हमें यह निर्णय कराइये कि इस तृष्णा की उत्पत्ति कहां से होती है और इन्द्रियों का बाह्य स्वरूप कैसे बनता है ? उस समय महर्षि कपिल जी ने अपने बहुत सूक्ष्म शब्दों में उस की विवेचना की। जब विवेचना करने लगे तो उन्होंने कहा कि भाई ! मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि जब मानव इस संसार में आत है, मानव का यह आत्मा कहो परन्तु जब इस मानव शरीर में आता है, तो इसके दो स्वरूप हैं जिसे ज्ञान और प्रयत्न कहा जाता है। ज्ञान और प्रयत्न दोनों की उत्पत्ति हो जाती है। मानो जब दोनों अपने संचारू रूप से कार्य करने लगते हैं। ज्ञान से ही इस संसार का विभाजन होता है। क्योंकि ज्ञान नहीं होगा तो संसार का विभाजन भी किसी काल में नहीं हो सकेगा। और विभाजन किसका होता है ? प्रयत्न का, क्योंकि प्रयत्न का यह स्वभाव रहता है कि वह अपनी प्रवृत्तियों का विभाजन करता रहता है, उसमें विभाजन क्रिया स्वाभाविक आती रहती है। ज्ञानका जब तक प्रयत्न पर संघात नहीं होगा तब तक उसमें विभाजन क्रिया आ ही नहीं सकेगी।

तो महर्षि कपिल जी ने अपनी विवेचना में कहा है कि जब ज्ञान और प्रयत्न उत्पन्न हो गया, तो ज्ञान का कार्य है कि वह स्वाभाविक कामना उत्पन्न होती रहती हैं, क्योंकि जितना ज्ञान होता है, उतना ही मानवका हृदय व्यापी होता है और कामना

उत्पन्न करने की उसकी प्रवृत्ति बढ़ जाती है। जब यह ज्ञान की प्रवृत्ति बनने लगी तो इस प्रयत्न के विभाग बनने। ऋषि कहता है कि **ज्ञान का माध्यम तो मनीराम बन गया और प्रयत्न का माध्यम यह प्राण बन गया** जिसको हम संचारू रूप से जो संसार में जिसकी परिक्रिया प्रतीत हो रही है। जहां भी हम दृष्टिपात करते हैं वहीं हमें प्राण प्रतीत होता, मानो प्रत्येक वस्तु में आज एक जब हम वसुन्धरा के गर्भ में जाते हैं तो वसुन्धरा के गर्भ में जितना भी विभाजन है, मानो जितनी भीइसमें परिक्रिया हो रही है वह सब उस प्राण की ही प्रतीत हो रही है।

तो वेद का ऋषि कहता है, आचार्य जनों ने कहा है, कपिल जी कहते हैं कि यह जो प्राण है, शरीर में आते ही इसका विभाजन होने लगा। **इस मनीराम ने ज्ञान का माध्यम लेकर के इसी प्राण के पांच भाग बना दिये** जिन को प्राण, अपान, इदान, समान और व्यान कहा जाता है। जब यह पांच प्राण बन गये तो मनीराम को कहां शान्ति हो सकती थी, वह कामना उत्पन्न करने लगा। यह कामनाओं का केन्द्र था। जब कामना उत्पन्न कर दी तो इन्हीं प्राणों के पांच भाग और हो गये जिनको नाग, देवदत्त, थनंजय कूर्म और किरकल यह पांच प्राण और बन गये। यह दस प्राण बन गये—पाँच प्राण और पांच उप-प्राण और क्योंकि आगे इनके विभाजन नहीं हो सकते थे यहीं तक सीमित हो गये।

अब मनीराम का तो यह कर्त्तव्य था कि यह कामना उत्पन्न करता रहा। कामनाओं का केन्द्र बना रहा। कामना उत्पन्न करना इसका स्वभाव बन गया, ज्ञान का माध्यम होने के नाते।

जब यह कामना उत्पन्न होती रहीं तो यह पांच कर्म इन्द्रियां और पांच ज्ञान इन्द्रियों का जन्म होगया। इसी मानव शरीर में पांव ज्ञान इन्द्रियां और पांच कर्म इन्द्रियों का जन्म हो गया। क्योंकि स्थूल रूप तो था परन्तु इनके विषय नहीं थे। अब पांच प्राण और पांच उप प्राण और इन्द्रियों के साथ मन स्वयं अब जो इन्द्रियों का विषय था और उन विषयों के साथ मन का सन्निधान होने के नाते मानव क्या बाह्य स्वरूप बन गया। इस मानव का जब वाह्य स्वरूप बन गया तो वाह्य स्वरूप में क्या हो सकता था ? आगे मन का कामना उत्पन्न करना कार्य था, कामना उत्पन्न होती रहीं और इन्द्रियां भी तृप्त हो गईं। इन्द्रियां अपना कार्य करने लगीं। जब अधिक कामना उत्पन्न होगी तो उन अधिक कामनाओं का ही तृष्णा के रूप में उत्पन्न हो जाना है। उन्हीं को तृष्णा कहा जाता है।

जब तृष्णा उत्पन्न हो गई तो कामना तो ज्यों की त्यों रहीं, कामना उत्पन्न होती रही। अब तृष्णावादी जो प्राणी है उसकी आज्ञा के अनुकूल कार्य हो जाता है तो बेटा ! सुन्दर है और यदि आज्ञा के अनुकूल कार्य नहीं होता तो अति असुन्दर हो जाता है। इसमें और व्यापकता आ जाती है। जब आज्ञा के अनुकूल कार्य नहीं होता तो अपमान होता है। और जब आज्ञा के अनुसार कार्य होने ही लगता है, होता ही रहता है तो एक काल वह आता है कि मानव में अभिमान की मात्रा उत्पन्न हो जाती हैं। तो मुनिवरो ! मान अपमान दोनों का जन्म हो गया। जब मान अपमान आ गया तो जब मान होगा तो कामना उत्पन्न होगी, मानो काम शक्ति उत्पन्न हो जाती है और जब अपमान आ गया तो बेटा ! क्रोध की उत्पत्ति हो

गई। क्योंकि, ममता से भरा हुआ जो क्रोध है वह मानव के जीवन का विनाश कर देता है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आदि ऋषियों ने कहा है कि हे मानव! यदि आज तुम अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहते हो, महान् बनाना चाहते हो तो यह जो कामनाओं की उत्पत्ति है इस पर तुम अपना आधिपत्य करो क्योंकि यदि इसके ऊपर नहीं हो सकेगा, कामना उत्पन्न नहीं होंगी तो क्रोध उत्पन्न होगा, क्रोध का सम्बन्ध नाग प्राण से रहता है। उसको नाग प्राण इसीलिये कहते हैं क्योंकि जब मानव को क्रोध उत्पन्न होता है तो नाग जो प्राण है इसका ऊपरी मुख हो जाता है और मानव के शरीर में जो अमृत होता है उसका पान करता रहता है और क्रोध आते ही उसका विष बना देता है। विष जितना बन जाता है उतना ही मानव के जीवन का विनाश होता चला जाता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! मैं इस सम्बन्ध में अधिक वाक्य नहीं उच्चारण करूंगा। केवल यह कि आज हमें नाग, देवदत्त धन्नजय आदि प्राणों को जान लेना चाहिये इनका कार्य क्या है, उसे भी विचार लेना चाहिये क्योंकि मनीराम तो कार्य देता है। यदि कार्य नहीं देगा तो इनके विभाग हो ही नहीं सकेंगे क्योंकि सबसे प्रथम प्राणों को कार्य दिया जाता है। प्राण नाभि केन्द्र से और मस्तिष्क से होते हुये घ्राण के द्वार से चले जाते हैं। ऋषि ऐसा कहते हैं कि मानव के जितने सुन्दर विचार होते हैं, जितना मानव का शुद्ध आहार और व्यवहार होता है उतना ही मानव के शरीर में सुन्दर परमाणुओं की उत्पत्ति होती है और शरीर के जितने सुन्दर विचारों के परमाणु होंगे तो एक २ श्वास के एक एक प्राण की अग्रित गति में, एक एक श्वास के साथ में

अरबों खरबों परमाणु हम से बाह्य हो जाते हैं मानो उसका ऊपरी रूप बन जाता है। अब जितने विचार मानव के सुन्दर होते हैं, महान् होते हैं उतना ही यह वायुमण्डल पवित्र होता हैं।

मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक काल में कहा था कि यह राष्ट्रवाद सुन्दर नहीं बन रहा है। यह समाज अवनतिशील हो रहा है। तो मैंने इनके प्रश्नों का उत्तर देते हुये यही कहा था कि बेटा ! मानव की विचारशक्ति अशुद्ध हो गई है जिसके कारण परमाणुवाद सुन्दर नहीं रहा है क्योंकि प्रकृति का यह स्वरूप होता है कि परमाणुओं से सुगठित है और जितना परमाणुवाद विचित्र होता है, शुद्ध होता है, महान् होता है उतना ही यह वायु मण्डल पवित्र होता है। जितना वायुमण्डल पवित्र होगा उतना ही राष्ट्रवाद क्या, मानववाद क्या, ऋषिवाद क्या सभी पवित्र होता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! महर्षि कपिल जी ने कहा है कि इस मनीराम ने प्राण का विभाग दे दिया कि नाभि-केन्द्र से चल करके तुम घ्राण के द्वार से चले जाओ। अपान का क्षेत्र बना दिया। अपान मृत्यु का स्वरूप बना दिया किसी किसी काल में। मैं इसकी विशेष व्याख्या नहीं करने जा रहा हूं। वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय इतना ही हैं कि यह जो अपान है यह मानव की अवस्था को निगलता रहता है। जो भी आहार करता है इसको निगलने का कार्य अपान का होता है। अपान अपना कर्त्तव्य करता रहता है। इसी प्रकार उदान जो भी हम आहार किया करते हैं नाना प्रकार के पदार्थों का यह उदान उन्हें तपाता है, पचाता है, रस बना देता है और उस रस को बना करके जो सामान्य प्राण है इसको अर्पित कर

दिया जाता है। यह सब विभाजन इस मनीराम के द्वारा होता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! जब यह पांचों प्राण बन जाते हैं, देखो व्यान बन जाता है इसका जो क्षेत्र है वह कण्ठ से ऊपरला क्षेत्र है। बेटा ! जो महान् योगेश्वर इस व्यान प्राण को जान लेता है मानो व्यान प्राण की जो गति है वह कहां तक है ? व्यान प्राण मस्तिष्क में कैसे कार्य करता है और ब्रह्मरन्ध्र में क्या क्या कार्य करता है ! बेटा ? इन प्राणों के स्वरूपों को जानने वाला जो योगेश्वर होता है वह इस ब्रह्माण्ड में जितने लोक लोकान्तर हैं वह सब की गति को जानलेता है। मैंने अभी वर्णन करते हुये कहा था कि ब्रह्मरन्ध्र में नाना प्रकार की सूक्ष्म नाड़ियां होती है। उनका सम्बन्ध नाना लोक लोकान्तरों से होता है क्योंकि यह जो हमारा मानव शरीर है यह सूक्ष्म सा पिण्ड हैं और ब्रह्म पिण्ड है क्योंकि ब्रह्माण्ड की और पिण्ड की कल्पना की है आदि आचार्यों ने।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आगे वेद के ऋषियों ने कहा है कपिल जी ने कहा है कि मानो देखो इन प्राणों का कार्य और क्षेत्र बन जाता। कार्य वाहक प्रारम्भ हो जाता है। जब यह पांचों प्राण नाग, देवदत्त, धनंजय आदि बनते हैं तो इन पाँचों प्राणों को कार्य अर्पित किया जाता है। नाग प्राण प्रायः यह कार्य करता है कि अमृत का विष बनाता है जब इसकी इस प्रकार की एक अवस्था आती है और देवदत्त अपपृत्त कार्य करता है। और धनंजय घृणाकृतित कार्य करता है। इसी प्रकार अपना २ कार्य वाहक करते हुये इन्द्रियों से बाह्य स्वरूप बनता हुआ इस मानव का संसार में प्रादुर्भाव हो जाता है। आज हमें पुनः से योगी बनना है। यह बाह्य स्वरूप तो हमारा

बन गया अब योगी बनना है। योगी कैसे बनोगे इस पर

विचारविनिमय करना हमारा सभी का कर्त्तव्य होता है।
वास्तव में योगी वह होता है जो अपने मन को अपने अधिकार में कर लेता है। जब ब्रह्माण्ड की कल्पना अपने मन से ही कर लेता है, अपने हृदय में ससार की ही कल्पना नहीं परन्तु इसका दिग्दर्शन कर लेता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! हमारे ऋषि मुनियों ने यह कहा है, अनुभवी पुरुषों ने यह कहा है कि आज जो मानव योगी बनना चाहता हैं उसे सबसे प्रथम अपनी जो तृष्णा हैं उनको सूक्ष्म बनाना है, ससार में कामनाओं को उत्पन्न ही नहीं होने देना है वह कामना उत्पन्न होंगी तो जन्म अवश्य होगा क्योंकि काम-नाओं के ऊपर विजय पाना है और कामनाओं के ऊपर विजय कौन पाता है ? हमारे यहां एक संन्यास की कल्पना की जाती है। मेरे प्यारे महानन्दजी एक वाक्य कहा करते हैं कि संन्यासी जन भगुवा वस्त्र को क्यों धारण करते हैं ? तो हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है कि वह इसलिये किये जाते हैं क्योंकि यह वस्त्र नहीं होता मानव का अन्तःकरण भी इस प्रकार का होना चाहिये,क्योंकि मानव के अन्तःकरणमें जब अग्ने स्वरूप हो जाता है क्योंकि भगुवा वस्त्र को अग्ने स्वरूप कहतेहैं, अग्ने वस्त्र कहा जाता है। जब मानव का अन्तःकरण ज्ञान और विज्ञान से उस महान् प्रभु के निदान से इतना सुगठित हो जाता है, इतना महान् बन जाता है, इतना तप जाता है कि नवीन अंकुर उसके शरीर में उत्पन्न होते ही भस्म हो जातें हैं। भगुवा वस्त्र धारण करने का अभिप्राय केवल शरीर की रक्षा करना नहीं है, अन्तःकरण को ज्ञानरूपी अग्नि से तपाना है। मानो अपनी महानता के द्वारा तपाया जाता है। तो इस सम्बन्ध में अधिक

विचार नहीं दूंगा, केवल यह कि हम अपने महान् विचारों को लेकर चलना चाहते हैं, महानता को लेकर योगी बनना चाहते हैं।

बेटा! योगी कैसे बनोगे? योगी उस काल में बनोगे जब अन्तःकरण को तपा दिया जायेगा। यह जो मन है यह बड़ा महान् चंचल है, बड़ा दूरी और दिग्दर्शिता है, दर्शन करता रहता है सारे संसार के। इसमें संलग्न हो जाता है परन्तु सबसे प्रथम तृष्णा पर विजय पाना है, सबसे प्रथम तो काम और क्रोध पर विजय पाना है। काम और क्रोध पर कैसे विजय पा सकोगे? प्रश्न यह आता है कि संसार में मन से शक्तिशाली कोई वस्तु है अथवा नहीं। इसका उत्तर ऋषि-मुनियों ने दिया है कि मन से शक्तिशाली प्राण है। इस मन को प्राण में संलग्न कर दो, इसकी इसमें निष्ठा हो जानी चाहिये। जब इसका तारतमय होता चला जायेगा, मानो जहां ज्ञान और प्रयत्न, मन और प्राण की साम्य अवस्था हो जाती है, वहीं मानव का अन्तःकरण तपने लगता है। जब यह मन प्राण में संलग्न होने लगता है, निष्ठा होने लगती है, उस समय क्रोध भी, मान-अपमान भी नहीं होता। क्योंकि संसार में मानव को यह मान ठग लेता है। बेटा! मैं तो इस संसार को दृष्टिपात करता चला आ रहा हूं। मानव पुत्र से नहीं ठगा जाता, पत्नी से नहीं ठगा जाता यदि ठगा जाता है तो मान के आँगन में। प्राणी को यह मान नहीं होना चाहिये क्योंकि जब मान की उत्पत्ति हो जाती है और पराकाष्टा पर चला जाता है तो मानव के आवागमन का एक चक्र बनता रहता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! वेद के ऋषियों ने कहा है कि मान-अपमान दोनों को त्यागने के लिये हमें मन को उस शक्ति-

शाली प्राण में लगा देना है। प्राण और मन दोनों को एकाग्र करने का नाम ही एक साधना कहलाई जाती है। उसी को साधक अपने मस्तिष्क में, अपने हृदय में सदैव विचारधारा में लाते रहते हैं, उसी का सत्संग किया करते हैं। जब भी मन की गति अगृत होती है उसी काल में यह उसी का सत्संग करते हैं। प्राण के ऊपर ही विचारधारा जाती रहती है।

आगे चल करके कपिल जी ने कहा है कि इन दोनों को मिलान करने से ही यह जो दस प्राण हैं, यह जो इन्द्रियों के विषय हैं, यह मन में लय हो जाते हैं। मन की गति जब प्राण में लय होती है यह प्राण जो प्रयत्न का अग्रित विभाग हो गया था उसी में लय हो जाता है। लय हो जाने के पश्चात् इसकी जो नाना प्रकार की कामनाओं की तरंगे उत्पन्न होती रहती हैं जो व्यापार होता रहता है वह सब प्राण में लय होता रहता है। जब प्राण में लय होता रहता है तो यह पांचों प्राण नाग, देवदत्त आदि में इन इन्द्रियों का विषय लय हो जाता है और इन प्राणों का मुख प्राणों में लय हो जाता है जिसको हम प्राण, अपान उदान, समान कहते हैं, मानो देखो ज्ञान और प्रयत्न दोनों का मिलान हो जाता है। ऋषि कहते हैं उस अवस्था का नाम मुक्ति कहा जाता है।

आगे मानव यह प्रश्न करने लगे कि आगे क्या होता है जब ज्ञान और प्रयत्न दोनों एकाग्र हो जाते हैं ? महर्षि कपिल जी ने कहा है कि आगे यह योगी का अनुभव रह जाता है मानो यह अवचन्य विषय रह जाता है, इसका वाणी से वर्णन नहीं किया जाता।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज जैसा मेरे प्यारे महानन्द जी ने कुछ सूक्ष्म सा प्रश्न किया था उसका संक्षिप्त में उत्तर

दिया। महर्षि कपिल जी ने अपना यह विचार ऋषि-मुनियों में व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि भाई मेरा विचार तो ऐसा है कि मानव के शरीर में जितना विभाजनवाद है यह सब मन और प्राण का है और इस संसार में पृथ्वी से ले करके सूर्य मण्डल क्या, जितने भी लोक-लोकान्तर हैं, इनका जो विभाजन हो रहा है, जितनी विभाजन-क्रिया तुम्हें प्रतीत होती है, यह मन और प्राण दोनों की है। ज्ञान और प्रयत्न दोनों ही प्रतीत होते चले जा रहे हैं। द्वितीय और कोई क्रिया प्रतीत नहीं होती है क्योंकि तृतीय और क्रिया कोई है ही नहीं क्योंकि ज्ञान और प्रयत्न दोनों की ही समता मुझे प्रतीत होती चली जा रही है। इतने में उनके गुरुदेव आ पहुँचे और उन्होंने कहा कि यह क्या कर रहे हो कपिल जी ? उन्होंने कहा कि मेरी विचारधारा है कि यहां संसार में जो यह मन है इसी के द्वारा संसार का विभाजन होता है। पृथ्वी में जो रस का विभाजन होता है वह भी मन के द्वारा है, वनस्पतियों में जो नाना प्रकार के रसास्वादन होते हैं, वह भी इसी मन के द्वारा होता रहता है। यह संसार मुझे मानवत्व से लेकर के यह जो लोक-लोकान्तरों तक जगत् है, यह मुझे मन और प्राण का ही प्रतीत होता है। भगवन्! मुझे और कोई वस्तु प्रतीत नहीं देती।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! ऋषि ने कहा है कि बेटा! तुम तपस्वी बनो। वास्तव में तुम्हारा वाक्य सुन्दर है। परमात्मा का जो विषय है, महान् जो अपृति मुक्ति का विषय है, वह मानव वाणी से वर्णन नहीं कर सकता है। और जो करता है तो वह मुक्ति के विषय को जानता ही नहीं।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! वेद के ऋषियों ने कहा है, आचार्य-

जनों ने कहा है मैं नहीं कहता इस वाक्य को, यह हमारा ही वाक्य नहीं है, आदि आदि ऋषियों का यह वाक्य है। यह महान् व्यक्तियों का एक सुन्दर मार्ग है जिसको अपनाने से मानव सुन्दर बना करता है। तो वेद के ऋषियों ने कहा है, आचार्यजनों ने कहा है कि आज हम उस मार्ग को जानने के लिये, प्रतिष्ठत रहने के लिये सदैव उत्सुक रहते हैं कि हम उस मार्ग को जाने जहां हम परमात्मा को वास्तव में जान सकें। तो कपिल जी ने और उनके गुरु ने कहा कि बेटा! तुम तपस्वी बनो। जब मानव तर्कवाद में चला जाता है, नाना प्रकार का तर्क आ जाता है, परमात्मा के ऊपर भी नाना प्रकार का अशवन होने लगता है और आत्मा के ऊपर जब यह होने लगता है तो वेद के ऋषि ने कहा कि हे पुत्र! उसी का नाम आत्मा है क्योंकि जहां ज्ञान और प्रयत्न दोनों लय हो जाते हैं, एक अवस्था में चले जाते हैं, एक हो जाते है उसी का नाम आत्मा है क्योंकि गुण-गुणी से कदापि भी पृथक् नहीं होता। इसीलिये आज तुम तपस्वी बनो।

उन्होंने कहा बहुत सुन्दर। महर्षि कपिल जी तपस्वी बने। तपस्वी किसे कहते हैं? बेटा! तपस्वी वह होता है जो मानव अपनी इन्द्रियों को तपा लेता है, अपनी प्रवृत्तियों को तपा लेता है। देखो पांच ज्ञान इन्द्रियां पांच कर्म इन्द्रियों को तपा लेता है। तपाता किसमें है? ज्ञान में, विवेक में। जब मानव तप जाता है तो वह मानव अन्त में यह कहा करता है कि नेति नेति का शब्द स्वाभाविक हो जाता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वाक्य यह क्या कहता चला जा रहा था? वास्तव में संसार में जो भी मानव आता है, वह प्रभु के राष्ट्र में कोई मानव प्रबल नहीं होता,

कोई उच्च नहीं होता क्योंकि परमात्मा सर्वो प्रथम है, पूज्य है, महान् है। महर्षियों ने तो यहां तक कहा है उसकी अनुपम विद्या को विचारविनिमय करते हुये, वेद की पुनीत विद्या को विचारविनिमय करने लिये महर्षि शांडल्य जी ने तो यहां तक कहा है और भृगु जी ने भी यहां तक कहा है कि हे प्रभु! यदि हमारी सहस्त्रों वर्षों की अवस्था हो और हम आपके ज्ञान-विज्ञान का अनुसन्धान करते रहें तो प्रभु! वह अवस्था भी हमारी सूक्ष्म है। वेद का जो विषय है, परमात्मा का जो विषय है, ब्रह्माण्ड और ज्ञान और विज्ञान का जो विषय है, यह एक महान् विषय है। इसको विचार विनिमय करने के लिये मानव को अपनी प्रवृत्तियों को तपाने की आवश्यकता रहती है, जैसा मैंने पूर्व काल में प्रकट करते हुये कहा है। मानव का प्रादुर्भाव और मानव का लय हो जाना यह प्राण और मन की ही दोनों दशा हैं। इनको विचारविनिमय करना हमारा कर्त्तव्य है। इसी को विचारना है क्योंकि मानव संसार में आया है प्रपंच में, क्योंकि, यह जो मानव का शरीर है यह भी एक प्रकार का प्रपंच है। जब इस प्रपंच वाले मानव शरीरको विचारविनिमय करने के लिये यहां इस संसार में आते हैं, तो बेटा! इसी को विचारविनिमय करना है, अनुसन्धान करना है। इस प्रपंच को विचारना है, यह जो नाना प्रकार की इन्द्रियों का विषय है उसको विचारो। विचार करके इसको संकुचित बनाओं, संकुचित बनाकरके विचारों में विशालता और इनके जो विषय हैं उनमें सूक्ष्मता लाना महान् पुरुषों का कर्त्तव्य हुआ करता है। यह महान् आत्माओं का कर्त्तव्य होता है क्योंकि कोई २ आत्मा होती है जो मानव को सुन्दर मार्ग देकरके चली जाती है। आज हमें उन महान् पुरुषों को विचार लेना चाहिये और उन

के ऊपर हमें अपने जीवन को न्योछावर कर देना चाहिये। ऐसा हमारा पुनः से विचार होता चला आया है।

आओ मेरे प्यारे ऋषिवर! आज का हमारा वेद पाठ क्या कहता चला जा रहा था। आज के वेद पाठ में उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन आता चला जा रहा था। महानन्द जी की एक इच्छा है कि परमात्मा कर्त्ता है कि अकर्त्ता है। कल यह सूक्ष्म सा विचार चलेगा। आजका हमारा वाक्य यह कहता चला जा रहा है कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्यायें सभी को संसार में साधक बनना है और साधक बन करके ही हम इस संसार में आये हैं साधना करने के लिये। साधना तो हमें करनी ही है। यहां उत्तम साधना नहीं करोगे तो कुसाधना करोगे परन्तु करोगे अवश्य। इसीलिये हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है कि भाई साधना करने के लिये जब तुम आये हो, तो ऊंची साधना क्यों न की जायें। यहां ऊंची से ऊंची कल्पना और ऊंची से ऊंची साधना होनी चाहिये। मुझे एक वाक्य स्मरण आता चला गया। यह वाक्य मुझे बहुत प्रिय लगा करता है।

बेटा! एक समय देव ऋषि नारद इस मृत मण्डल में आ गये तो उन्होंने विचारा कि मैं किसी प्राणी को स्वर्ग में ले चलूंगा। तो जब वह आकरके इस संसार में भ्रमण करने लगे, तो देखा! एक मनुष्य बड़ा दुःखित हो रहा है। ऐसा कहते हैं कि उसकी पत्नी उसे नित्य प्रति दण्ड दिया करती थी। प्रातः काल में उसे दण्ड दिया। वह मानव बड़ा दुःखित हो रहा था और वह प्रभु से याचना कर रहा था कि प्रभु! अब मैं जीवन नहीं चाहता केवल मृत्यु चाहता हूँ। देव ऋषि नारद बोले कि यह मनुष्य तो बड़ा दुःखित हो रहा है और उससे कहा कि

चलो आज मैं तुम्हें स्वर्ग में ले चलूं। वह प्राणी बोला चलिये भगवन् !

अब नारद मुनि और वह मानव दोनों भ्रमण करते हुये स्वर्ग के द्वार पर पहुँचे। स्वर्ग के द्वार पर जा करके नारद मुनि ने कहा कि देखो भाई यह स्वर्ग का द्वार है, मैं स्वर्ग में भगवान् विष्णु से आज्ञा लेने जा रहा हूं और तुम इस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो जाओ, यहां सुन्दर प्रभु का चिन्तन करो। नारद मुनि तो स्वर्ग में जा पहुँचे और वह मानव उस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो गया जहां मन्द सुगन्ध वायु चल रही थी, आनन्द आ रहे थे। मानव के मन में कल्पना जागी कि अरे! यह तो बड़ा सुन्दर स्थान है, यहां तो तेरे लिये एक आसन होना चाहिये था। अब बेटा! वह तो कल्पवृक्ष था, कल्पना करते ही एक सुन्दर आसन लग गया। उस आसन पर वह विराजमान हो गये। अब उस मनुष्य के मन में कल्पना जागी, जब ऐश्वर्य ने उसे लालायित कर दिया कि यहां तो मेरे लिये विश्राम करने वाला आसन भी होना चाहिये था। अब कल्पना की तो आसन लग गया। उस आसन पर वह विराजमान हो गया। विराजमान होने के पश्चात् अब उस मनुष्य के मन में कल्पना आई कि अरे! यहां तो नाना अप्सरायें होनी चाहियें थी ऐश्वर्य के लिये। अब कल्पना करते ही वहां ऐश्वर्य करने के लिये अप्सारयें भी आ पहुँची। इतने में उस मनुष्य के मन में कल्पना जागी कि यदि मृत लोकवाली अब पत्नी होती तो तेरे ऊपर डण्डा होता। अब कल्पना करते ही मृतलोक वाली पत्नी भी आ पहुँची। डण्डे सहित है। अब वह मानव बड़ा दुःखित हुआ। आगे वह मानव और उसके पश्चात् उसकी पत्नी जी, दीर्घगति से भ्रमण कर रहे हैं।

तो इतनेमें नारद मुनिजी आ पहुंचे और उन्होंने अपनी दीर्घ वाणी से कहा कि अरे! यह क्या? कल्पना को त्याग। उस मनुष्य ने कल्पना को त्यागा। कल्पना त्यागते ही न तो पत्नीजी हैं न अप्सरायें हैं, न आसन है केवल वही कल्पवृक्ष विरामान है। देव ऋषि नारद मुनि ने कहा "अरे! महा मूर्ख! अरे! जब तुझे इस कल्पवृक्ष के नीचे कल्पना ही करनी थी तो यहां भी तूने अशुद्ध कल्पना की। अरे! यदि तू यहां ऋषि बनने की कल्पना करता तो ऋषि तो बन जाता। यदि देवता बनने की कल्पना करते तो देवता बन जाते।"

तो मुनिवरो! वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या? कि यह जो सर्वश जगत् है यह एक प्रकार का कल्पवृक्ष है। यहाँ मानव आया है ऊंची से ऊंची कल्पना करने के लिये। यहां तुम्हें कल्पना करनी है, कर्म करने हैं। अशुद्ध कर्म करोगे परन्तु कर्म किये विना तो रह नहीं सकते। इसलिये तुम्हें मुक्ति के लिये कर्म क्यों नहीं करने चाहिये। तो वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि आज प्रभु के जगत् में प्रत्येक प्राणी साधक बनने के लिये आया है, साधक बनना है। यदि कोई मानव यह कहने लगे कि जब तक उसकी संसारी भोगों में प्रवृत्ति है, जगत् में प्रवृत्ति है, वह साधक है, वह मिथ्या वाक्य उच्चारण करता है। वास्तव में,संसारमें,प्रभु की सृष्टि में प्रत्येक प्राणी साधक ही बना रहता है। साधना करना उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। साधना करनी चाहिये। यही आजका हमारे वाक्यों का अभिप्राय है। हमें मन को, जो प्राण शक्ति-शाली है उसकी, उसमें प्रादुर्भावता, उसमें उसका सन्निधान कर देना चाहिये। आजका हमारा यह वाक्य अब समाप्त होने

जा रहा है। कल मुझे समय मिलेगा तो कल तुम्हारे शेष प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे।

आज के इन वाक्यों का अभिप्राय क्या है कि हमें प्रभु का चिन्तन करना है, अपने मानव जीवन को उत्तम बनाना है, महान् बनाना है। यह है आज का वाक्य। अब वेद का पाठ होगा। उसके पश्चात् यह वार्ता समाप्त हो जायेगी।

परमात्मा कर्त्ता है या अकर्त्ता ?

१२-४-६९ को सायं ४ बजे योगनिकेतन ऋषिकेष में किया।

श्री योगेश्वरानन्द जी द्वारा प्राक्कथन

श्री ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी का प्रवचन ईश्वर के विषय में होगा। इस संसार का निर्माण करने वाला या जिससे यह निर्माण होता है वह सगुण है या निर्गुण है। यदि उसको हम सगुण मानते हैं तो वह परिणाम भाव को प्राप्त होने वाला होगा चाहे वह जड़ हो या चेतन हो। यदि हम उसको निर्गुण मानते हैं तब वह किस प्रकार से संसार का रचयिता होगा। यही एक प्रश्न है। उसका मैं तो यह समाधान करता हूँ कि परमात्मा निर्गुण होते हुए भी प्रकृति से महान् सूक्ष्म और व्यापक है यह व्यापक और चेनत है। यह जो सर्वव्यापक है, यह चेतन सत्ता है, इस चेतना में, यह जो जड़ प्रकृति है, ओत-प्रोत हो करके ठहरी हुई है। या तो उसके व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध से इसका निर्माण या सृष्टि की उत्पत्ति मान लो अथवा सन्निधान मात्र से भी उत्पत्ति हो सकती है या संयोग सम्बन्ध से उत्पत्ति हो सकती है जब दो पदार्थ हैं चाहे उनका व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध मानो, चाहे संयोग सम्बन्ध मानो, चाहे सान्निध्य सन्निधान मानो। तो इसका मैं यह समाधान करता हूँ। निर्गुण होते हुए भी, दो प्रकार का निमित्त कारण होता है। एक निमित्त कारण तो वह होता है जो कर्त्तापन के रूप से निमित्त बनता है जैसे एक मकान बनाने वाला कोई होता

हैं वह कर्त्ता रूप से है और एक सन्निधान मात्र से भी कर्तृत्व धर्म पैदा हो जाता है जैसे लोहा और चुम्बक पत्थर। चुम्बक पत्थर को यदि थोड़ी दूरपर लाकर रख दिया जाए तो स्वाभाविक ही लोहा गतिशील या सुई गतिशील होने लगती है तो शंका पैदा होगी कि चैतन्य ब्रह्म के साथ, यदि चैतन्य ब्रह्म को, हम चुम्बक रूप से मान लें और प्रकृति को हम सुई रूप से मान लें तो इनका संयोग करने वाला, सान्निध्य में लाने वाला एक तीसरा मानना पड़ता है। इसका समाधान मैं यह किया करता हूँ कि क्योंकि प्रकृति भी नित्य है और ब्रह्म भी नित्य है तो नित्य ही इनका व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध बना रहता है। तो व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध बने रहने से सान्निध्य भी सम्बन्ध है। सान्निध्य कहते हैं दो पदार्थों के सान्निध्य माना जाता है और दो पदार्थोंके होने से ही संयोग भी माना जाता है और दो पदार्थ होने से ही व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध भी माना जाता है। इन तीनों अवस्थाओं में ही ईश्वर निर्गुण रहते हुए भी निमित्त कारण हो करके संसार की रचना हो सकती है। तो एक तो कर्त्ता रूप से निमित्त कारण होता है, एक सन्निधान मात्र से निमित्त कारण होता है कि जैसे सुई थी, वहां संयोग करने वाला तो तीसरा हो गया परन्तु यहां इस संयोग को हम प्रकृति और ब्रह्म के संयोग को मैं नित्य मानता हूं तो इसमें किसी को ला करके सम्बन्ध करने की आवश्यकता नहीं रहती। फिर शंका होती है कि जब इनका नित्य सम्बन्ध है तो प्रकृति में सदा नित्य ही क्रिया रहनी चाहिए, नित्य ही व्यापार होता रहना चाहिये। परमात्मा भी शान्ति से नहीं बैठेगा और प्रकृति भी कभी शान्ति से नहीं बैठेगी। सदा व्यापार होता रहेगा। तो इनके व्यापार का कभी अभाव नहीं

होगा और वास्तव में होता भी नहीं है। जैसे मेरा शरीर है, मेरे आपके शरीर में आत्मा विराजमान रहता है. जब तक आत्मा का संयोग सम्बन्ध शरीर के साथ रहता है तब तक शरीर सदा क्रियाशील ही बना रहता है, इसमें कुछ न कुछ व्यापार बना ही रहता है। जब इनका सम्बन्ध विच्छेद हो जाता, शरीर मुर्दा बन करके खतम हो जाता है। आत्मा के विषय में ऐसे भी कहा जाता है। तो यह तो अनित्य संयोग सम्बन्ध है, और नित्य संयोग सम्बन्ध में, अच्छा ५० या १०० साल की मेरी आयु है, १००साल तक मेरे आत्मा का मेरे शरीर केसाथ नित्य सम्बन्ध बना हुआ है, तो इस नित्य सम्बन्ध में भी, रात्री को सुषुप्ति अवस्था आती है। तो सुषुप्ति अवस्था में भी सूक्ष्म रूप में प्राण रूप व्यापार शरीर में बना रहता है। जाग्रत अवस्था में तो व्यापार है ही और निद्रा में भी कुछ न कुछ सूक्ष्म रूप से शरीर में व्यापार रहता है क्योंकि उठने के सुख और दुःख की अनुभूति होती है तो मैं तो इस जीवात्मा को भी असंग और निर्भय मानता हूँ, अणु होते हुए भी। इश्वर को निष्क्रिय अणु और निर्भय मानता हूँ। तो तब यह दोनों नित्य ही हो जाते हैं। उनका सम्बन्ध भी नित्य मानना होगा। इसलिए प्रकृति और ब्रह्म का नित्य सम्बन्ध है। प्रलय काल की अवस्था में भी, सूक्ष्म व्यापार जैसे निद्रा की अवस्था में हमारे शरीर में सूक्ष्म जठराग्नि भी कार्य करती रहती है, प्राण भी कार्य करता रहता है, और रस आदि का निर्माण संचार आदि यह भी कार्य होते रहते हैं, स्थूल जो व्यापार होते हैं वह बन्द हो जाते हैं, इसी प्रकार प्रलय की अवस्था में सामान्य सूक्ष्म गति जो चैतन्य के सम्बन्ध से होती हैं, वह बराबर बनी रहती है। क्रिया का अभाव प्रलय की अवस्था में

भी नहीं होता। वह ऐसी स्थिति हो जाती है जैसी मेरी निद्रा की अवस्था में जा करके हो जाती है। तो प्रलय कालभी निद्रा के ही समान हैं। वह भगवान् की निद्रा चाहे समझ लो, क्योंकि जड़ और चैतन्य का संयोग ही गति का हेतु बना हुआ है, तो उस वक्त सामान्य सूक्ष्म गति माननी पड़ेगी। तो मैं तो इसका इस प्रकार से समाधान करता हूं क्योंकि मैं तो सर्वथा निर्गुण-वादी हूँ ईश्वर को निर्गुण ही मानता हूँ और जो सगुण मानते हैं वह इसका समान करें। उनके सामने सैकड़ों समस्याएं रख दूंगा समाधान में उनकी बात मान लूंगा। तो इस विषय पर आज ब्रह्मचारी जी को अपना प्रवचन करना चाहिए और इस का समाधान करना चाहिए।

ब्रह्मचारी जी द्वारा प्रवचन

जीते रहो!

देखो मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां नित्य प्रति वेदमन्त्रों का पठन-पाठन प्रायः होता ही रहता है। वेदों के पठन-पाठन के भी नानाप्रकार होते हैं उच्चारण करने के जैसे जटा पाठ, घन पाठ मालापाठ, विषर्ग पाठ, उदात्त, अनुदात्त और भी नाना प्रकार होते हैं। हमारे यहां एक मालापाठ होता है। मेरे प्यारे महा-नन्द जी यह कहा करते हैं कि हम इन पाठों के जो भेदन हैं, नाना जो प्रकार हैं उनमें एक माला पाठ होता है। इसे माला पाठ क्यों कहा जाता है। हमारे यहां ऋषि-मुनियों ने इसके सम्बन्ध में एक वाक्य कहा है कि माला कहते हैं जहां मनके

औरा धागा होता है। धागे में पिरोये हुये मनके होते हैं उसको माला कहते हैं। इसी प्रकार मालापाठ इसलिये कहा जाता है कि वेद का जितना भी ज्ञान है अथवा विज्ञान है और वेद की जो प्रत्येक ऋचा है, प्रत्येक मन्त्र है वह 'ओं' रूपी धागे में पिरोया हुआ है। इसीलिये हमारे ऋषि-मुनियों से जब वेद-मन्त्र का उच्चारण प्रारम्भ होता है तो प्रारम्भ में 'ओं' का उच्चारण किया जाता है। क्यों किया जाता है ? क्योंकि जितना यह जगत् है, यह ब्रह्माण्ड है, यह उस परम पिता परमात्मा की महानता में पिरोया हुआ है जो दृष्टिपात आता है। मानव ज्ञान और विज्ञान के शिखर पर पहुँच जाता है अथवा कोई भौतिक विज्ञान में चला जाता है,कोई आध्यात्मिक विज्ञान का विश्लेषण करने लगता है। परन्तु वह सब उस परम पिता परमात्मा में पिरोया हुआ है।

हमारे यहां जब यह माना जाता है कि ज्ञान यह वास्तव में परमात्मा से ही कटिबद्ध है, उसी से सुगठित है तो यह ब्रह्माण्ड भी, जितना भी परमाणु वाद है, जितने भी यह प्रपंच है अथवा सर्वंश जगत् है यह उस परमात्मा में ही पिरोया हुआ है। परन्तु इस वाक्य में नाना प्रकार के दोषारोपण आ सकते हैं। यदि हम सर्वंश जगत् को उस परम पिता परमात्मा में ही पिरोया हुआ स्वीकार कर लेते हैं, तो वह नाना प्रकार के अवगुण मानव में आते रहते हैं, अथवा प्रकृति में आते रहते हैं, क्या वह भी परमात्मा से ही सुगठित है ? तो यहां इसका ऋषि-मुनियों ने यह उत्तर दिया है कि वह परमात्मा, नाना प्रकार के जो अवगुण है, उनसे पृथक् रहता है। जब हम यह विचारने लगते हैं कि सृष्टि का प्रादुर्भाव कैसे होता है ? क्या सृष्टि का प्रादुर्भाव मनके रूपों से होता है जैसे धागा और

मनके होते हैं। इसी प्रकार होता है अथवा इससे पृथक् होता है। तो हमारे यहां आदि आचार्यों के भिन्न-भिन्न प्रकार के उसमें विचार हैं। महर्षि वायु जी का विचार कुछ और है, अंगिरा जी का विचार और है ? मैं उन विचारों को तुम्हारे समक्ष नियुक्त किये देता हूं। अब जो तुम्हारे समक्ष आंगन में आये उसे स्वीकार कर लेना।

महर्षि अंगिरा जी कहते हैं, सबसे प्रथम तो आदित्य जी कहते हैं कि वह जो परमात्मा है उसमें ही सर्वंश जगत् पिरोया हुआ है। यह जो प्रकृति है यह मानो परमात्मा के गर्भ में विराजमान रहती है और परमात्मा का जो महत् तत्त्व है, उस महत् तत्त्व के उत्पन्न होते ही, यह प्रकृति और परमात्मा दोनों, क्योंकि प्रकृति का सन्निधान ब्रह्म से होता है, प्रकृति रच जाती है, मानो इसका व्यापक रूप बन जाता है। व्याप्य और व्यापक दोनों में सुगठिता रहने के नाते मानो देखो उसमें एक विकृत अध्यान धारा आश्रित होने लगती है। ऐसा हमारे यहां वायु जी ने कहा है। मैं संक्षिप्त परिचय कराऊंगा, अधिक इसमें विवेचना नहीं दे सकूंगा, परन्तु यहां अंगिरा जी कहते हैं कि नहीं संसार में मानो एक ही ब्रह्म है। वही जो ब्रह्म है उसी ब्रह्म का यह सर्वस्व जगत् है, उसी में यह व्याप्त है, उसी में यह सब कुछ हो रहा है। वह जो अज्ञान छाया हुआ है वह मानो जीव रूप में परिणत होता रहता है। परन्तु जब जीव का अज्ञान दूर हो जाता है, तो वह एक ओं ब्रह्म हो जाता है। ऐसा महर्षि अङ्गिरा जी का विचार है।

बेटा ! मैं तुम्हें अभी-अभी निर्णय कराऊंगा कि इसमें हमें कौन से वाक्य को स्वीकार करना है। महर्षि अङ्गिरा जी ने जब ऐसा कहा कि एक ओं ही ब्रह्म है और ब्रह्म की ही सत्ता इस

जगत् में विराज रही है, यह सब हमें ब्रह्म का स्वरूप ही प्रतीत हो रहा है, जैसे गऊ के दुग्ध में घृत ओत-प्रोत है इसी प्रकार, जैसे वायु मण्डल में विद्युत विराजमान है, ऐसे ही वह ब्रह्म है। प्रकृति भी उसका स्वरूप माना जाता है उसी के गर्भ में रहती है और यह सर्वस्व जगत् उसी के गर्भ में ओत-प्रोत होता है। यह महर्षि अंगिरा जी का विचार है परन्तु उनका निदान किया हुआ एक वाक्य है। उसके पश्चात् वायु जी का विचार है कि संसार में कारण, उपादान कारण, निमित्त कारण, यह उन्होंने तीन प्रकार के पदार्थ स्वीकार किये हैं। जैसे जीव है जीवात्मा और ब्रह्म और प्रकृति यह तीनों उन्होंने स्वीकार किये हैं और तीनों को स्वीकार करके उन्होंने कहा है कि यह जो जीवात्मा है यह मानव शरीर में व्यापता रहता है। क्योंकि जीवात्मा अनन्त हैं इनकी कोई गणना नहीं हो सकती, परन्तु यह प्रकृति ब्रह्म और जीवात्मा तीनों नित्य माने जाते हैं। यह किसी भी काल में नष्ट नहीं होते। प्रलय काल में भी अपने-अपने स्वरूप में रमण करते रहते हैं। एक वेद मन्त्र को लेते हुये वायु जी ने कहा है "व्यापं ब्रह्मा आत्म-ब्रह्मे ब्रह्मवस्ती सुप्रजा कथन नविस्ति सुप्रजा:" यहां महर्षि वायु जी ने कहा है कि यह जो तीनों हैं, इनमें प्रकृति और ब्रह्म दोनों का सन्निधान होता है और दोनों के सन्निधान से, दोनों की प्रकृति होने के नाते, यह जो जगत् है यह प्रकृति रूप में रच जाता है जो हमें दृष्टिपात आता है। मानो वह जो ब्रह्म है वह महान् सूक्ष्म अणु है परन्तु यदि उसमें यह माना जाता है कि इस महान् जगत् का रचियिता ब्रह्म है तो वायु जी ने ऐसा स्वीकार नहीं किया। वायु जी ने कहा है "अहं ब्रह्मे अकृतिः मा मान्चम् ब्रह्मे अस्ति सुप्रजो व्याप्म् ब्रह्मे नित्य प्रति

रुद्राः" वायु जी ने कहा है कि वास्तव में जब ब्रह्म का प्रकृति [का], दोनों का व्याप्य और व्यापक स्वरूप माना जाता है। परन्तु देखो प्रकृति का अपना भी कोई अस्तित्व होता है। ब्रह्म व प्रकृति जहां दोनों का सूक्ष्म सा सन्निधान से ही, मानो देखो, इस प्रकृति में व्यापकता आ जाती है, प्रकृति में एक स्व भाव आ जाता है। क्योंकि रचना का जो स्वाभाविक गुण है वह महर्षि वायु जी ने प्रकृति में स्वाभाविक माना है। जैसे ब्रह्म का स्वाभाविक गुण उसकी चेतना है। और ब्रह्म की ही चेतना प्रकृति में कुछ सूक्ष्म सन्निधान होने से ही प्रकृति का जो स्वभाविक गुण है वह उमड़ आता है। उमड़ने के नाते उसकी, संसार की, रचना हो जाती है। मानो ब्रह्म जो वह इस प्रकृति का वास्तव में वायु मुनि जी ने कर्त्ता स्वीकार नहीं किया है।

आगे जो यह जीवात्मा है, यह इस प्रकृति के आंगन में विराजमान हो करके, अपना कर्म करता रहता है। इसमें ही मानो देखो चित्त का आभास, जीव के अभ्रम में होता है। वह जो ब्रह्म है, मानो ब्रह्म में, चित्त नहीं स्वीकार किया। ब्रह्म में चित्त स्वीकार किया जाता, तो वायु जी कहते हैं कि यदि ब्रह्म में चित्त स्वीकार किया जाता, तो उसकी रचना में मानो यह प्रतिभा अकृत होता कि वह उसका परिणाम भी ब्रह्म में अनिवार्य है, क्योंकि जो भी चेतना हो, अचेतना हो, परन्तु जो भी रचना रचता है,उसके परिणाम की जिज्ञासा उसे अवश्य होती है। क्योंकि यह उसका स्वभाव रहता है। जैसे एक मानव है जो भी वह रचना रचता है, किसी भी प्रकार की रचता है, योग की रचो, आध्यात्मिकवाद की रचो, भौतिकवाद की रचो, ज्ञान विज्ञान में पहुँच जाओ

परन्तु अन्त में उसके परिणाम की उसे जिज्ञासा अवश्य होतीहै, इसी प्रकार वायु जी ने कहा है "सम्भवन्तयानम् ब्रह्मे व्यापम् ब्रह्मा प्रति अस्ति विश्वा रथोन्तमम् प्रमाणः" वेद के ऋषि ने कहा है, वायु जी ने कहा है कि वास्तव में यदि ब्रह्म को यह स्वीकार किया जाये कि ब्रह्म ही सृष्टि का कर्त्ता धर्त्ता है तो उस ब्रह्म में सदैव परिणाम की जिज्ञासा होना स्वभाविक हो जाता है।

बेटा! मैं इसका प्रत्येक वाक्य का कोई समर्थन अभी तक नहीं कर रहा हूं। मैं केवल ऋषियों के विचार तुम्हारे समक्ष नियुक्त कर रहा हूँ, क्योंकि कोई भी मानव अपने मन में, अभिमान करने लगे, इसलिये मैं नियुक्त कर रहा हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है वायु मण्डल के परमाणुओं से कि यदि कोई मानव यदि अभिमान करने लगे कि मैंने संसार में नवीन कोई रचना रची है, नवीन ब्रह्म के सम्बध में कुछ निर्णीत किया है तो यह मानव का असम्भव विचार है। यह मानव का निजी विचार नहीं होना चाहिये, क्योंकि ज्ञान नित्य है, ब्रह्म का जो ज्ञान है वह अनित्य है उसकी कोई सीमा नहीं है। हमारे यहां ऋषि मुनियों ने भिन्न भिन्न प्रकार के विचार हमारे समक्ष नियुक्त किये हैं। बेटा! तुम कहो तो मैं यहां सहस्रों ऋषियों के विचार तुम्हारे समक्ष नियुक्त कर सकता हूं, परन्तु मैं इस सम्बन्ध में नहीं जाना चाहता। मैं परमाणुवाद या वायुमण्डल के इन वाक्यों में नहीं जाना चाहता हूं। केवल वाक्य यह प्रकट करना है कि वायु मुनि जी ने क्या कहा है।

वायु मुनि जी ने बहुत से प्रमाण दिये। उन्होंने कहा कि वास्तव में ब्रह्म के सूक्ष्म से सन्निधान से ही प्रकृति का स्वभाव उमड़ आता है और उसी स्वभाव से पंच महाभूतों में क्रिया आ

जाती है। क्योंकि, जितना प्रकृतिवाद है वह पंच महाभूतों में विराजमान हैं और पंच महाभूतों के एक एक के गर्भ में जो जो उनका गुण है, उनका जो स्वभाव है मानो वह शान्त रूप से विराजमान है। ब्रह्म का सूक्ष्म सा सन्निधान होते ही उनके स्वभाव उमड़ आते हैं और पंच महाभूतों का यह ब्रह्माण्ड रच जाता है। परन्तु किसी लोक में कोई तत्त्व प्रधान हो जाता है, अपने स्वभाव से, और किसी लोक में कोई तत्त्व प्रधान हो जाता है। जैसा मैंने पूर्वकाल में भी कहा है, इस पृथ्वी पर पार्थिव तत्त्व प्रधान होता है, परन्तु सूर्यमण्डल में अग्नि तत्त्व प्रधान होता है, और बृहस्पति मण्डल में वायु तत्त्व प्रधान होता है, ध्रुव मण्डल में जल तत्त्व प्रधान होता है।

यहां नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की रचना इन पंच महाभूतों से कोई पृथक् नहीं होती। इन्हीं पंच महाभूतों के अन्तर्गत नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की रचना होती रहती है। जैसे हमारा यह सूर्य मण्ढल है,जैसे यह पृथ्वी मण्डल है जिसमें पार्थिक तत्त्व वाले प्राणी विचरण करते हैं, परन्तु सूर्य मण्डल में अग्नि तत्त्व वाले प्राणी हैं और बृहस्पति मण्डल में वायु तत्त्व प्रधान प्राणी हैं। यहां आत्मा अनन्त होने के नाते बेटा ! देखो प्रभु के अनन्त ब्रह्माण्ड में, मानो इस प्रकृति मण्डल में,नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की अनन्तता है। प्रकृति में भी अनन्तता है, उसकी कोई सीमा नहीं है। जैसे ब्रह्म की चेतना की कोई सीमा नहीं है, इसी प्रकार प्रकृति उसी के आँगन में रमण होने के नाते, उसकी भी कोई सीमा स्वीकार नहीं की गई हैं।

महर्षि वायु जी ने कहा है कि मेरा जो अपृत विचार है वह किसी ऋषि से भिन्न नहीं हो सकता। उन्होंने कहा है कि

मेरा जो अन्वेषण है, मेरा जो विचार है, वह यह कि वह जो ब्रह्म है, वह अकर्त्ता है। परन्तु सूक्ष्म सा सन्निधान प्रकृति से अवश्य होता है। हम उस सूक्ष्म से मिलान को हम क्या कह सकते हैं? उसको हम कर्त्ता स्वीकार करें अथवा नहीं करें? इसके ऊपर भी हमारा कुछ बल है। यहां वेद के कुछ मन्त्र स्पष्टता देते चले जा रहे हैं। उन्होंने कहा है "ब्रह्मे विश्वा रहनमम् आप्रति रूद्रों असवत्रि कृत्रि रूद्राः" वेद का आचार्य कहता है वेद के मन्त्र को लेकर के कि वास्तव में सूक्ष्म से संनिधान से, सूक्ष्म से मिलान से, मानो यह नहीं हो सकता कि वह प्रकृति का रचयिता हो गया है, ब्रह्माण्ड का रचयिता हो गया है, क्योंकि जैसे यदि यह स्वीकार किया जाये कि इस प्रकृति का संसार में कोई अस्तित्व नहीं है, तो प्रकृति का नित्य मानना असफल हो जायेगा। वह मानव के लिये सुन्दर नहीं होगा। यदि यह स्वीकार किया जाये कि केवल ब्रह्म में ही प्रकृति रमण करती रहती है, यह ब्रह्म का ही स्वरूप माना गया है, तो यह जो नाना प्रकार के दोषारोपण हैं यह भी ब्रह्म में स्वीकार करने अनिवार्य हो जायेंगे।

परन्तु इससे ब्रह्म परिणामी होता चला जायेगा, यह वायुजी का विचार है। उन्होंने कहा है कि मैं इस वाक्य को स्वीकार नहीं करूंगा परन्तु एक समय वायु मुनि जी के समीप महर्षि आदित्य जी और महर्षि अंगिरा जी आदि ऋषियों का एक समाज एकत्रित हुआ। उनके विचारोंको विचारविनिमय करने के लिये महर्षि तत्त्व मुनि जी ने कहा कि महाराज हम आपके विचारों से सहमत नहीं हैं। महर्षि वायु जी ने कहा कि मैं यह नहीं कहता कि तुम मेरे विचारों को स्वीकार करो परन्तु जो वेद कहता है, परम पुनीत विद्या कहती है मैं उसके आधार

पर वाक्य प्रकट कर रहा हूँ। रहा यह वाक्य कि तुम स्वीकार करो या न करो। परन्तु मेरा जो यह विचार है, यह वायुमंडल में विचरण करेगा और मानो जो वेद की पवित्र विद्या है उस में से मैंने इन वाक्यों की जानकारी की है, निदान किया है। अब तुम मेरे विचारों को नष्ट नहीं कर सकते।

जब तत्त्व मुनि जी ने कहा कि भाई! हम आपके विचारों को नष्ट नहीं करना चाहते परन्तु हमें भी तो इसका कुछ ज्ञान हो जाये क्योंकि जब हम एक ही ब्रह्म को स्वीकार करते हैं, एक ही ब्रह्म है और यह प्रकृति उसी के गर्भ में विराजमान रहती है। रहा यह वाक्य कि हम यह स्वीकार करें कि दोषारोपण जो होते हैं वह प्रकृति के हैं, अथवा ब्रह्म के हैं, क्योंकि यह जो प्रकृति है इसमें जड़ता है। जड़ता होने के नाते हम यह कैसे स्वीकार करेंगे कि इसका भी या "ब्रह्म ब्रह्म अस्ति सुक्रता।' क्योंकि ब्रह्म की चेतना तो प्रकृति को प्राप्त होती है उसके पश्चात् ही प्रकृति अपना कार्य करने लगती है। आज हम यह स्वीकार करते हैं कि प्रकृति भी उसी का स्वरूप है। वायु जी ने कहा कि आपके वाक्यों को कोई भी नष्ट नहीं कर रहा है क्योंकि विचारों में प्रत्येक मानव संसार में स्वतन्त्र है। मैं भी स्वतन्त्र हूं। आप भी स्वतन्त्र हैं। जहां स्वतन्त्र का प्रश्न आया, वहां ऋषि मुनियों ने कहा कि भाई यह वाक्य तो सुन्दर है कि तुम विचारों में तो स्वतन्त्र हो, मैं भी विचारों में स्वतन्त्र हूं, प्रत्येक प्राणी संसार में अपने अपने विचारों में स्वतन्त्र है। परन्तु स्वतन्त्रता वह भी सुन्दर नहीं होती जिसमें आगे चलकरके परतन्त्रता आ जाती हैं।

उन्होंने कहा कि मुझे अपने विचारों में परतन्त्रता प्रतीत नहीं होती है तो क्या परमात्मा की दया स्वीकार करना असं-

भव हो जायेगा ? उन्होंने कहा कि परमात्मा का सदैव न्याय होता है, उसके नाम के गर्भ में ही उसकी दया होती है, इसलिए मैं इस वाक्य को स्वीकार नहीं करूंगा। ऋषि मुनियों में एक विवाद हो गया। इस विवाद में महर्षि आदित्य जी ने कहा कि तुम्हारा वाक्य तो सुन्दर हैं कि न्याय के गर्भ में ही दया है। परन्तु देखो जब जब, न्याय और दया प्रभु की स्वीकार करते हो या नहीं ? और जब न्याय दया स्वीकार करते हो, तो यह देखो ब्रह्म तुम्हारे विचारों से परिणामी हो गया है।

जब यह वाक्य वायु मुनि जी के समक्ष आया तो वायु मुनि जी ने विचारा और विचार करके कहा कि वास्तव में वाक्य सुन्दर है परन्तु इसके ऊपर विचारा जाये। विचार विनियम होंने लगा। महर्षि वायु जी ने कुछ समाधिष्ट होकर के, विचार विनिमय करके उन्होंने बुद्धि के सुन्दर पटल में जा करके, और चित्त के आगन में जा करके, चित्त और बुद्धि दोनों का सन्निधान करते हुए, वायु जी ने उत्तर दिया कि वास्तव में मैं इस वाक्य को स्वीकार नहीं कर रहा हूँ कि ब्रह्म की न्याय और दया मैं इस रूप से स्वीकार करूं। मेरा जो वास्तविक वेद का विचार है वह ऐसा है कि वह जो ब्रह्म है मानो ब्रह्म की जो न्याय और दया हैं केवल वह वहीं तक सीमित रहती है जहां तक उसका प्रकृति में सूक्ष्म सा सन्निधान होता है। क्यों कि प्रकृति का यह स्वाभाविक गुण होता रहता है, क्योंकि जीवात्मा और प्रकृति दोनों के सन्निधान से मानो देखो न्याय और दया वह स्वाभाविक होती रहती है। वह की नहीं जाती। जब इस वाक्य को स्वीकार किया गया तो यहां नास्तिकवाद की तरंगें उत्पन्न होने लगीं। परन्तु जब नास्तिकवाद की तरंगें उत्पन्न होने लगीं, तो इसमें भी भिन्न भिन्न प्रकार के विचारा-

रोपण होंने लगे। उस समय यह स्वीकार किया गया कि आज हम वास्तव में यह वाक्य कैसे स्वीकार करें तो ऋषि मुनियों के लिए किसी द्वितीय काल में विचार विनिमथ करने के लिए समय प्रदान किया गया।

इसमें बेटा देखो! महर्षि मंगले तेतु महाराज के आश्रम में एक सभा हुई। उस सभा में महर्षि वायु मुनि जी महाराज, महर्षि तत्त्वमुनि महाराज सोमकेतु भृंगी ऋषि, आकृती ऋषि-वरो की पुनः एक सभा हुई। उस सभा में यह प्रश्न उत्तर होने लगे। उस समय महर्षि तत्वमुनि महाराज और महर्षि अंगिराजी और आदित्य मुनि महाराज यह सभी आदि ऋषिवर विराज-मानहो गये। उन ऋषियों के समाजमें पुनः से संघर्ष होने लगा, विचार विनिमय होने लगा और अन्तमें यह विचार हुआ, महर्षि वायुजी ने कहा कि वास्तव में जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि परमात्मा वास्तव में क्या है मानो उन्होंने कहा "अनः ब्रह्म कृत्रि रुद्रा" वह जो ब्रह्म है वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म अणु माना गया है परन्तु ऋषि मुनियों के विचार में एक वाक्य आया कि आत्मा को कितना सूक्ष्म अणु स्वीकार करोगे। उस समय महर्षि वायु जी ने कहा कि मानव के शिर का जो केश होता है, एक वाल होता है उसका गोल विभाग कर लिया जाये और उस गोल विभाग के साठ भाग करोगे और जो साठवां भाग होगा उसके भी निन्यानवे भाग करोगे वह जो निन्यानवेवां भाग है उसके वराबर जीवात्मा स्वीकार की गई है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! महर्षि वायु मुनि महाराज ने जव ऐसा कहा आदित्य मुनि महाराज बोखला गये उनके हृदय में एक महान् तरंगें की तरंगें उत्पन्न होने लगीं। उन्होंने कहा कि वास्तव में यह हम स्वीकार कर सकते हैं। अणु को इस

प्रकार स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु ब्रह्म को कितना अणु मानोगे ? उन्होंने कहा है कि ब्रह्म इतना अणु हैं, इतना सूक्ष्म है कि यह जो जीवात्मा का निंन्यानवेवां भाग है इसके ९९ ही भाग किये जायें और ९९ वाँ जो भाग है उसके ६० भाग किये जायें, इतना सूक्ष्म ब्रह्म स्वीकार किया गया हैं।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आज हम यह स्वीकार कर सकते हैं कि जीवात्मा के लिये क्या और ब्रह्म के लिये क्या इसके लिये, हम क्या-क्या स्वीकार करें। जब यह वाक्य संघर्ष का एक विषय बन जाता हैं उस समय महर्षियों ने एक वाक्य कहा है। महर्षि वायु जी ने कहा है कि मेरा तो यह विचार है कि मैं तो ब्रह्म को अकर्त्ता ही स्वीकार करता हूं। देखो आदित्य ऋषि जी ने कहा कि तुम ब्रह्म को स्वीकार कर लो कि यह जो ब्रह्म है यह अकर्त्ता है। परन्तु जब प्रकृति को सूक्ष्मसा भी इसमें व्याप्य और व्यापक स्वीकार करोगे, तो तुम ब्रह्म को अकर्त्ता स्वीकार कर लो, परन्तु यदि तुम सूक्ष्मसा भी स्वीकार कर लोगे, तो उसी समय देखो ब्रह्म संसार का रचयिता माना जायेगा। जब यह वाक्य उनके मस्तिष्कों में आया वायु मुनि जी और आदित्य जी दोनों के विचार विनिमय होने लगे। जब दोनों का विचार विनिमय होने लगा तो दोनों के विचारों में एक व्यापकता आने लगी और उस समय यह स्वीकार किया गया कि वास्तव में इस विवाद में न जाओ, क्योंकि ब्रह्म का जो विषय है वह बुद्धि का विषय नहीं केवल अनुभव का विषय रह जाता है। आदित्य मुनि जी ने जब यह एक वाक्य कहा तो उस समय वायु मुनि जी ने कहा कि यह तो हम वास्तव में स्वीकार कर सकते हैं। अन्त में ब्रह्म

को नेति-नेति उच्चारण कर सकते हैं परन्तु जहां तक बुद्धि की सीमा है, जहां तक शब्दों की सीमा है वहां तक मैं ब्रह्म को अकर्त्ता ही स्वीकार करता रहता हूँ, क्योंकि वास्तव में मुझे उसमें कोई प्रतीति प्राप्त नहीं होती है इसलिये मैं उसे कर्त्ता स्वीकार कर ही नहीं पा सकता। वायु मुनि जी के यह वाक्य स्वीकार करके आदित्य मुनि जी ने कहा कि क्यों नहीं कर सकते ? क्योंकि इसमें तो तुम्हारा सिर नीचे हो जायेगा, क्योंकि जब भी कोई वाक्य यौगिक वाक्य आयेगा, उसी समय तुम्हारा सिर नीचे हो जायेगा, क्योंकि सिर नीचे हो जाना ही ऋषि के लिये मृत्यु के तुल्य स्वीकार किया गया है। जब आदित्य जी ने यह वाक्य उच्चारण किया तो वायु जी ने कहा कि वास्तव में मैं इस वाक्य को कैसे स्वीकार करूँ। मैं क्या इन वाक्यों को एक ही ब्रह्म स्वीकार कर लूँ। उन्होंने कहा कि नहीं एक ब्रह्म को स्वीकार मत करो, परन्तु इन तीन पदार्थों को नित्य स्वीकार कर लो। देखो आत्मा, परमात्मा और प्रकृति तीनों ही वाक्यों को ले करके चलो। जहां सूक्ष्म सा भी व्याप्य और व्यापक भाव दोनों में आ जायेगा उसी समय उसी की चेतना स्वीकार की जायेगी। वहां उस चेतना में यह स्वीकार मत करो कि यह जो चेतना आई हैं उसका परिणाम ब्रह्म को होगा। ब्रह्म उसका परिणामी नहीं होगा, क्योंकि उसका परिणामी केवल जीवात्मा अथवा प्रकृति ही होगी, क्योंकि ब्रह्म को तो उस रूप में तुम वास्तव में अकर्त्ता स्वीकार कर लो, मत स्वीकार करो, यह तो तुम्हारा विचार है, परन्तु जहां यह विचार स्वीकार किया जायेगा कि व्याप्य व्यापक रूप दोनों का आते ही, मानो उसमें तुम्हें कुछ न कुछ स्वीकार करना ही होगा, और उसमें कोई न कोई तुम्हारे

समीप, क्योंकि ब्रह्म की जो चेतना है वह ब्रह्म की चेतना प्रकृति में स्वीकार करनी होगी, क्योंकि वास्तव में प्रकृति की जो रचना है उसकी रचना तुम स्वाभाविक स्वीकार कर लोगे। परन्तु यदि रचना स्वाभाविक स्वीकार कर ली, और वह स्वीकार भी उस रूप से तुम स्वीकार कर रहे हो जब कि ब्रह्म की व्याप्य और व्यापक रूप आ जायेगा। जब व्याप्य और व्यापक रूप दोनों का स्वीकार करोगे तो प्रकृति में जो चेतना है वह सूक्ष्म सी ब्रह्म की स्वीकार करने के नाते मानो देखो उस महान् प्रकृति की रचना तुम्हें स्वाभाविक स्वीकार करने में भी कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि यह सार्वभौम सिद्धान्त हो सकता है। सार्वभौम सिद्धान्त स्वीकार करने में हमें भी कोई आपत्ति नहीं है और न किसी ऋषि को हो सकती है।

परन्तु रही यह वार्त्ता कि परमात्मा की दया और न्याय जो एक वाक्य संसार में रह जाता है कि परमात्मा न्याय करता है, अथवा दया और न्याय दोनों ही किया करता है, तो वेद का ऋषि कहता है, आदित्य जी कह रहे हैं कि वह जो दोनों की चेतना है, दोनों की जो प्रधि अस्ति है मानो देखो यह स्वीकार करने में हमें कोई आपत्ति नहीं है क्योंकि ब्रह्म भी एक सूक्ष्म अणु है और वह जो अणु है उस सूक्ष्मता में ही एक महान् चेतना है, प्रबल चेतना है,उस चेतना के प्रभाव से ही जहां-जहां उसका चेतना भाव जाता है वहीं एक सुन्दर रचना, कहीं चित्त की रचना होती रहती है, कहीं प्राण की सुन्दर रचना होती है, कहीं मन की रचना होती रहती है, कहीं इन्द्रियों की रचना है। यह रचना उसके प्रतिविम्ब से ही स्वीकार की जा सकती है। परन्तु वह जो पंच महाभूत हैं उसमें तो प्रकृति का स्वाभाविकत्व और परब्रह्म परमात्मा

की सुन्दर व्याप्य और व्यापकता का भाव वहां आ ही जाता है। परन्तु जहां यह स्वीकार किया जाता है कि ब्रह्म में वह जो आत्मा है, आत्मा इस मानव शरीर में सुतह जहां-जहां उसका प्रतिविम्ब जाता है वहीं वहीं रचना होती चली जाती है, जैसे प्रकृति में सुन्दर रचना होती चली जाती है और प्रकृति में रचना कहीं मानो देखो यह जगत् रच गया, परमाणुओं में गति आ गई, लोक-लोकान्तर रच गये, परमाणुओं के सुगठित होने से ही मानो यह सुन्दर रचना हो गई। इसी प्रकार देखो यह आत्मा का जहां प्रतिविम्ब जाता है वहीं सुन्दर से सुन्दर रचना होती चली जाती है। वह कहीं चित्त बन गया, कहीं अहंकार बन गया, कहीं बुद्धि का निर्माण हो गया, कहीं मन की रचना हो गई, कहीं इन्द्रियों की रचना हो गई, ज्ञान इन्द्रिय, कर्म इन्द्रियों की रचना हो गई। इसी का व्यापक रूप बनता चला जाता है। परन्तु इसी को संकुचित किया जा सकता है क्योंकि मैंने प्रकृति में पांचों गुण पूर्व काल में उच्चारण करते हुये कहा है कि प्रकृति के पांच गुण हैं जिनको हमारे यहां ध्रुवा, ऊंध्वा, व्यापकता, प्रसारण और आंकुचन कहा गया है। देखो यह जो मानव के शरीर में चित है, अहंकार है, बुद्धि है, मन है इनमें भी वह पांचों गुण और प्राण हैं जो स्वीकार किये जाते हैं। इनमें हमें भास होता रहता है। वास्तव में इनको व्यापक भी किया जाता है और इनको बहुत सूक्ष्म भी बनाया ज़ा सकता है।

हमारे यहां ऋषि-मुनियों ने तो ऐसा कहा है, ऋषिजन जो होते हैं वह इसीलिये इस वाक्य को स्वीकार करते हैं कि वह प्राणों को और मन को संकुचित बना करके अपने सूक्ष्म शरीर में भी पहुंच जाते हैं और इनको व्यापक बना

करके स्थूल शरीर में भी आ जाते हैं इन वाक्यों से हमें सिद्ध होता है कि वहां आत्मा को माता के गर्भ की भी आवश्यकता नहीं रहती। इस वाक्य की चर्चा तो मैं किसी काल में करूंगा। मैं वाक्य उच्चारण करते-करते दूरी चला जा रहा हूँ। बेटा ! मैं वहीं चला जाऊं जहां तुम्हारा वाक्य चल रहा था क्योंकि तुम भी प्रश्न करने वाले होगे क्योंकि तुम्हारी बुद्धि में भी नाना प्रकार की तरंगें उत्पन्न होती रहती हैं। मुझे उसमें कोई संकोच नहीं है क्योंकि ऋषि-मुनियों की जो विचारधारा है उसको मैं उच्चारण किया करता हूँ। रहा यह वाक्य कि हमारा कोई निजी विचार हो उस वक्या को भी मैं किसी काल में या अभी प्रकट कर सकूंगा। आज तो यह उच्चारण करते चले जा रहे थे कि आदि ऋषियों में यह संघर्ष चलता चला आया है। इस संघर्ष से हमें यह स्वीकार होता है कि देखो परमात्मा की दया और न्याय का प्रश्न चल रहा था। परमात्मा में न्याय है अथवा दया है मुनिवरो ! ऐसा स्वीकार किया गया है कि यह जो प्रकृति का निदान होता है, व्याप्य और व्यापक दोनों का जो स्वरूप आता है मानो देखो इसी के गर्भ में उसके व्याप्य होने में ही उसके अग्रित में परमात्मा निर्गुण और सगुण की चर्चा चल रही थी। मैं इसकी भी चर्चा करता चला जा रहा था। परमात्मा निर्गुण है अथवा सगुण है।

मुनिवरो ! परमात्मा एक रूप में निर्गुण माना गया है उसमें अकृति (अकर्तृत्व) है और किसी-किसी स्थान में, उसको ऋषि-मुनियों ने सगुण भी स्वीकार किया है क्योंकि प्रकृति में उसकी चेतना होने के नाते उसे सगुण स्वीकार किया गया है और क्योंकि निदान मात्र से ही उसको जब पृथक् स्वीकार

किया उसको कहा कि निर्गुण है इसमें कोई गुण नहीं है मानो वह तो एक अणु है वह प्रकृति में केवल सूक्ष्म सी चेतना दे देता है। यह भी स्वीकार किया है परन्तु इसमें कौन से वाक्य को स्वीकार किया जाये, यह वाक्य बेटा ! मैं अपना वाक्य कोई प्रकट नहीं करना चाहता। मुझे तो ऋषि-मुनियों के विचार, उनकी जो धारायें हैं उनको उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। यह परमात्मा की यह मेरे ऊपर अनुपम कृपा है कि वह दया कर देते हैं, उसी में मैं अप्रति विचार हैं।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! आगे विचार धारा चल रही थी कि ऋषि-मुनियों ने परमात्मा को निर्गुण और सगुण दोनों ही स्वीकार किया है। रहा यह वाक्य कि किस ऋषि की दृष्टि में कौनसा वाक्य यथार्थ है तो ऋषि-मुनियों ने कहा है कि परमात्मा निर्गुण रूप में ही स्वीकार करना बहुत ही सुन्दर होगा। रहा यह वाक्य हम इस वाक्यको और भी गम्भीरता में ले जाना चाहते थे, चाहते हैं, थे नहीं,क्योंकि थे में तो सन्देह हो जायेगा। मैं सन्देह में नहीं जाना चाहता हूँ केवल वाक्य यह प्रकट करना चाहता हूं कि वास्तव में जब हम ब्रह्म को निर्गुण स्वीकार कर लेते हैं तो इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं होती क्योंकि आत्मा का अपना अस्तित्व होता है, प्रकृति का अपना अस्तित्व होता है। रही परमात्मा की दया और न्याय का वाक्य, क्योंकि प्रत्येक मानव यह कहता है कि कि परमात्मा न्यायकारी है, वह न्याय करता रहता है क्योंकि न्याय के गर्भ में ही उस परब्रह्म की दया विराजमान रहती है, ऐसा कहते हैं। परन्तु देखो ! इस वाक्य में बेटा ! आदि ऋषियों ने इसके ऊपर भी मन्थन किया कि कोई जीवात्मा

अपराध करने के पश्चात् वह कारागार में नहीं जाना चाहता क्योंकि जहां तक वह सीमा में रहता है क्योंकि जब तक यह जो शरीर है, शरीर का वन्धन है, स्थूल शरीर का बन्धन है, वहीं तक देखो यह अज्ञान रहता है कि वह जाना नहीं चाहता, परन्तु जहां इसमें स्वतन्त्र भाव आ जाता है, स्वतन्त्र भाव में क्योंकि प्रकृति में ऐसी २ सूक्ष्म रचना हैं कि एक दूसरी वायु, एक दूसरा मण्डल, एक दूसरी तरंगे जो प्रकृति की होती हैं उसमें ही ऐसा स्वभाव होता है कि वही जीवात्मा को कारागार में और कारागार से पृथक् करने का भी उसमें स्वभाव आता है।

इसमें फिर यह प्रश्न उत्पन्न होताहै कि यह जीवात्मा प्रकृति के आधीन हो गई ऋषि-मुनियों ने कहा कि नहीं,जैसे परमात्मा और प्रकृति में व्याप्य और व्यापक रूप होता है, इसी प्रकार जीवात्मा में और प्रकृति में दोनों में व्याप्य और व्यापक भाव होता है। व्याप्य और व्यापक भाव से अपने २ भोगों को भोगती रहती है। ऐसा भी स्वीकार किया गया है परन्तु मैं इस वाक्य का समर्थन नहीं करता हूं। महर्षि वायु जी ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ संघर्ष किया है। उनके विचारों में और उन्होंने ऋषि-मुनियों को इस वाक्य में वाध्य कर दिया है। वाध्य करने के पश्चात् उन्होंने क्योंकि अन्तिम परम्परा है, बुद्धि की अन्तिम पराकाष्ठा हैं आगे ऋषि-मुनियों ने यह कहा कि भाई आगे चल करके तो यही वाक्य केवल अनुभव का रह जाता है, आगे का वाक्य अनुभव पर त्यागना चाहिये परन्तु जहां तक बुद्धि का निदान है, बुद्धि की जहाँ सीमा है वहां ऋषि-मुनियों ने यह स्वीकार किया है कि न्याय और जो दया होती है यह प्रकृति के ही गर्भ में विराजमान होती है, प्रकृति

में ऐसी सुन्दर रचनायें होती हैं, ऐसी तरङ्गित होती हैं क्योंकि जितने कारागार हैं वह सब कारागार प्रकृति के आंगन में रहते हैं, वह ब्रह्म के आंगन में नहीं रहते वह राष्ट्रीयवाद हो अथवा सूक्ष्मवाद हो। जैसे मानव के मन में देखो एक तो स्थूल से पाप करता है उसको राजा के कर्मचारी स्वीकार कर लेते हैं परन्तु वह राजा के कारागार में भी पाप कर लेता है वह मानसिक पाप करता है, अब मानसिक पापों को कौन स्वीकार करता है? बेटा! यह जो प्रकृति का वाद है, प्रकृति का जो मण्डल है और चित्त का जो मण्डल है उसमें पुनः संस्कार उत्पन्न होते रहते हैं और उन्हीं संस्कारों से बेटा! वह संस्कार स्वयं चित्त में से उत्पन्न होते रहते हैं, उन्हीं संस्कारों के अनुसार इस जीवात्मा का आवागमन होता रहता है। ऐसा स्वीकार किया गया है।

बेटा! देखो मैं इन वाक्यों को कहां ले जा रहा हूं। आज बहुत पूर्व काल के पश्चात् मुझे इन वाक्यों को उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, मैं और भी गम्भीरता में जाना चाहूंगा, आगे के वाक्यों में मैं इसका और भी गम्भीरता का विश्लेषण करूंगा। आज तो केवल मैं इतना वाक्य उच्चारण करने जा रहा हूं कि महर्षि वायु मुनि महाराज, अंगिरा जी, आदित्य जी, महर्षि तत्त्व मुनि महाराज, सौमकेतु मंगलांग ऋषि महाराज, सौमान्ची, अन्वाष्णी ऋषि आदि ऋषियों का समाज बेटा! यह आज नहीं हुआ, इन वाक्यों को लगभग अरबों वर्ष हो गये जब यह समाज एकत्रित होता था, ऋषि मुनियों के विचार होते थे। परम्परा से होते चले आये हैं, आज कोई नवीन वाक्य चहीं है। आज जैसा मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे उच्चारण किया है, इन्होंने कहा है कि "ब्रह्मस्ति सुप्रजा

माननृचति प्रद्दिस्तिती ।" आज का मानव इसको ढकोसला उच्चारण कर देता है तो मैं महानन्द जी के वाक्यों पर नहीं जाना चाहता क्योंकि न जाने यह कहां से क्या २ वाक्य लाया करते हैं । इन वाक्यों में मैं जाना ही नहीं चाहता हूं । केवल हमारा यही विचार है कि जीवात्मा का सन्निधान भिन्न है और प्रकृति का भिन्न है । जहां ब्रह्म और प्रकृति का व्याप्य और व्यापक स्वरूप है इसी प्रकार जीवात्मा और प्रकृति का व्याप्य और व्यापक स्वरूप है, अपने २ व्याप्य और व्यापक स्वरूप में अपना २ कार्य कर रहे हैं, क्योंकि प्रकृति को ऋषि मुनियों ने बेटा ! अकर्त्ता ही स्वीकार किया है । अन्त में यह निर्णय हुआ, मंगलेतरु ऋषि महाराज ने यह निर्णय किया कि वास्तव यह वाक्य सर्वोपरि सिद्धान्त हो सकता है । आगे चल करके इस वाक्य में सूक्ष्मता आ सकती है, यह अमिट हो सकता है परन्तु जो बुद्धि की पराकाष्ठता है, परम्परा है, परा प्रणाली है, उस दृष्टि से यह अमिट नहीं होगा । यह निर्णय होने के पश्चात् सभा समाप्त हो गई ।

तो बेटा ! मैंने अभी अपने कुछ सूक्ष्म से विचारों को प्रकट किया है । यह वाक्य तो ऐसा है, यह तो भंयकर वन है इसमें जाने के लिये, देखो किसी काल में जाते थे, अब तो समय इतनी आज्ञा नहीं देता है अब तो भोगों की प्रतीति होने के नाते, भोग भोगने के नाते यह सब कुछ होता रहता है । कोई काल था जब इन गम्भीर वाक्यों पर कई २ माह वाक् चलते रहते थे । बेटा ! आज मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है आज का यह वाक्य अब समाप्त भी होने जा रहा है । आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम परमात्मा को वास्तव में क्या स्वीकार करें । कल मुझे समय मिलेगा तो इसमें मैं भी

अपने कुछ विचार प्रकट कर सकूंगा कि हमारा सिद्धान्त क्या रहा है, इसमें कुछ अपने और कुछ महर्षि कपिल इत्यादियों ने क्या स्वीकार किया है। कल मुझे समय मिलेगा तो इसके ऊपर कुछ सूक्ष्म से विचार दिये जायेंगे। व्यापक नहीं सूक्ष्म-सूक्ष्म। आज भी मैंने सूक्ष्म विचार दिये हैं क्योंकि इसके ऊपर नाना प्रकार के तर्कवाद भी हो सकते हैं और होते रहते हैं। तो आज यह वाक्य अब समाप्त होने जा रहाहै कल मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चायें कल प्रकट की जायेंगी।

धन्य हो भगवन् !

तो बेटा ! आज का वाक्य तुमने स्वीकार कर लिया अपने प्रश्नों का उत्तर।

भगवन् ! अभी मेरे विचारों में सूक्ष्मता रह गई है। (हास्य के साथ) अच्छा इसका किसी काल में और सुन्दर रूपों से वर्णन करेंगे। उत्तर प्रश्नों के रूप में होगा।

हां भगवन्! मैं भी यही चाहता हूं कि उत्तर—प्रश्न भी हों।

अच्छा बेटा ! कल तुम्हारे दो प्रश्न हो सकते हैं।

अच्छा भगवन् !

तो मुनिवरो ! आज का यह वाक्य अब समाप्त। अब वेदों का पाठ होगा, इसके पश्चात् वेद का पाठ होगा।

[१३ अप्रैल १९६९ को प्रातः ५॥ बजे योग निकेतन, ऋषि-केश में दिया हुआ प्रवचन]

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज ! हम तुम्हारे समक्ष कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुण गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन मन्त्रों का पठन-पाठन कियां। हमारे यहां उस मनोहर पवित्र वेद वाणी जो आनन्दमयी कल्याण प्रदायिनी है, जिस वेद वाणी का प्रसार, उसकी महिमा मानव के मस्तिष्क में समाहित हो जाती है, तो मानव का कण्ठ उस महामना माता की उज्ज्वल धारा में परिणत हो जाती है। हमारे यहां परम्परा से ब्रह्म विचार भी होता रहता है, आत्म चिन्तन भी होता रहता है। इससे पूर्व शब्दों में हमारा कुछ सूक्ष्म शब्दों में ब्रह्म विचार चल रहा था। ब्रह्म की चेतना के सम्बन्ध में विचारविनिमय होता चला जा रहा था। हमारी जो अनुपम प्रतिभा है वह नाना प्रकार के पठन-पाठन में सुगठित रहती है जैसे हमारे यहां वेद मन्त्रों के नाना प्रकार होते हैं, जैसा हमने कल के शब्दों में भी उच्चारण किया था कि जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ, उदात्त, अनुदात्त और भी नाना प्रकार होते हैं।

हमारे यहां एक माला पाठ होता है जैसा इससे पूर्वकाल के शब्दों में हमने उच्चारण किया है कि माला पाठ किसे कहते हैं कि धागा और मनके दोनों सुगठित हो करके एक

माला प्रतीत होने लगती है, इसी प्रकार यह जो जगत् हमें लोक लोकान्तरों का प्रतीत हो रहा है, यह सब उस ब्रह्म और प्रकृति के व्याप्य और व्यापकता का सम्बन्ध होने के नाते यह संसार हमें संकलाबद्ध प्रतीत होता चला जा रहा है। उस संकला में जब हम यह विचारविनिमय करते हैं कि उस ब्रह्म की आनन्दमयी जो अनुपम ज्योति हैं, चेतना है वह जब प्रकृति के आंगन में ओतप्रोत हो जाती है तो प्रकृति का स्वभाव स्वतः उत्पन्न होने लगता है। इससे पूर्व मैं ऋषि मुनियों के विचार प्रकट कर रहा था। हम यह उच्चारण करते चले जा रहे थे कि आदित्य मुनि महाराज का क्या सिद्धान्त है और अंगिरा जी क्या उच्चारण करते चले जाते हैं और वायु जी ने क्या कहा है, यही विचार थे।

"भगवन्! इन विचारों में हमारा परम्परा से कुछ मतभेद रहा है।"

"हाँ उच्चारण करो।"

"भगवन्! हमारा मतभेद यह है कि जैसा आपने वायु मुनि के वाक्यों में कुछ शब्दार्थ कहा था कि वायु जी इन तीनों को इस प्रकार स्वीकार करते हैं, तो इससे तो भगवन्! यह जो नाना प्रकार के ऋषियों के सिद्धान्त हैं, यह अमिट हो जाते हैं और नास्तिकवाद की तरंगे उत्पन्न होने लगती हैं।"

"हास्य......बेटा! यह कैसे माना जा सकता हैं कि अभी तक हम यही नहीं विचार पायें हैं कि नास्तिकवाद कहते हैं किसको। नास्तिक उसको कहते हैं जिसको स्वयं आत्मविश्वास नहीं होता है, क्योंकि संसार में जितना भी नास्तिकवाद होता है, वह केवल उसकी आत्मा को अपने ऊपर स्वयं अधिकार न

होने के नाते ही, वह स्वतः ही नास्तिक कहलाये जाते हैं, क्योंकि संसार में केवल प्रभु का चिन्तन करने वाला ही आस्तिक नहीं होता। मानो प्रभु का चिन्तन जो आत्मिक श्रद्धा से करता है, और आत्मा के स्वरूप को जानता है वह संसार में वास्तविक आस्तिक होता है। रहा यह वाक्य कि नास्तिकवाद की तरंगें उत्पन्न होने लगती हैं—आज हम यही नहीं जान पाते—बेटा! तुम्हारे शब्दों से ही हमारे में नाना प्रकार की शंकायें उत्पन्न हो जाती हैं कि परम्परा से नास्तिक तो मैं उसे कहा करता हूं जो वेद की पोथी को जानने वाला हैं परन्तु वेद के स्वरूप को नहीं जानता, वह वास्तव में नास्तिक होता है। परन्तु रहा यह वाक्य कि प्रभु को नहीं स्वीकार करना, मानो हम प्रभु को अमिट कर देते हैं, तो इससे आज मानव यह स्वीकार नहीं कर सकता कि हम नास्तिक वन गये हैं, अथवा यह नास्तिकता है। हम जब प्रभु के अस्तित्व को अच्छी प्रकार जानने लगते हैं, जब हम तृतीय वाद का समर्थन करने लगते हैं तो इसमें नास्किताबाद का कोई शब्द आना ही नहीं चाहिये, और न इसमें हमें नास्तिकवाद ही प्रतीत होता है। मैंने पूर्व कई काल में प्रकट करते हुये कहा है कि जब हम यह विचारविनिमय करने लगते हैं कि हम त्रैत-वाद को, या प्रभु को, अकर्त्ता स्वीकार करते हैं। प्रभु अकर्त्ता है, क्योंकि उसकी अकर्त्ता में ही कर्त्ता की प्रतीति होने लगती है। मानव का सिद्धान्तों में' जो नाना प्रकार का भेदन आ जाता है, आगे चलकरके बेटा! बुद्धि की जो पराकाष्ठा है, उसमें जा करके तो एक ही तुलना हो जाती है। रहा यह वाक्य कि हम नास्तिकवाद में परिणत हो जायें, तो यह वाक्य सुन्दर नहीं होता, क्योंकि मुझे यह तुम्हारे शब्द प्रतीत

नहीं हो रहे हैं, मुझे तो कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि यह वाक्य तुम कहीं से चुनकर लाये हो।"

"हास्य...भगवन् ! ऐसा तो नहीं है।"

"नहीं ! मुझे प्रतीत हो रहा है क्योंकि मैं इस वाक्य को कैसे स्वीकार कर सकता हूं। अच्छा बेटा ! उस वाक्य को चलने दो जो चल रहा था। इन वाक्यों में जाने का हमें इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा कि हम इस वाक्य में चले जायें कि यह संसार नास्तिक है, आस्तिक है, परन्तु हम तो यह जानते हैं कि संसार में प्रत्येक मानव को, प्रत्येक प्राणी को आस्तिक होना चाहिये, क्योंक आस्तिक होना ही मानव की आत्मउन्नति है। यदि आत्मा की उन्नति का कोई मूलकारण है, तो उसका आस्तिकवाद है। आस्तिकवादी प्राणी संसार में किसी भी काल में निराशा को प्राप्त नहीं होता है। वह सदैव आशावदी होते हैं। आशावादी जो प्राणी हुआ करते हैं वह वास्तव में अपनी आत्मा की उन्नति करके संसार सागर से पार हो जाते हैं। जो संसार हमें नाना प्रकार के मान अपमान का प्रतीत हो रहा है, जिसमें मानव को सदैव यह अकृत रहता है कि इसमें नष्ट न हो जायें, मानव इनसे उपराम हो कर अपने जीवन को उन्नत बनाता चला जाता है।

तो बेटा ! मैं अपने वाक्यों को प्रारम्भ करने जा रहा था कि महर्षि वायु मुनि महाराज और आदि ऋषियों का जब समाज एकत्रित होने लगा, तो आगे चलकरके महर्षि भृगु ऋषि जी ने महर्षि वायु जी से एक वाक्य कहा कि महाराज ! जब आप यह स्वीकार करते हैं कि इस प्रकृतिका स्वयं स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, चेतना के प्रभाव से, चेतना के सूक्ष्म से सम्बन्ध से तो क्या इस आत्मा का भी इसी प्रकार स्वभाव

उत्पन्न हो जाता है, अथवा यह भी पृथ्वी का स्वभाव माना गया है। उस समय महर्षि वायु जी ने कहा कि हमारा तो यह विश्वास है और वेद कहता है कि"अत्मा ब्रह्मे व्रतं प्रभा वसुक्ती रुद्रो व्यापम् गति तक प्रमाणः" वेद का आचार्य कहता है कि यह जो मानव का शरीर है यह भी, जैसे यह ब्रह्माण्ड है और इसमें जैसे ब्रह्म की सूक्ष्म चेतना होने पर स्वभाव उत्पन्न हो जाता है। इस बाह्य जगत् में, इस सर्वंश लोक लोकान्तरों वाले ब्रह्माण्ड में जैसे प्रकृति की स्वयं स्वभाव चेतना से उत्पन्न होता है, एक अणु की चेतना से उत्पन्न होता है, परन्तु उसी चेतना से यह जो हमारा मानव शरीर है, इसमें भी आत्मा व्याप्य और व्यापक रूप से इसका सन्निधान होने पर, इस शरीर में भी चित्त इत्यादियों का स्वभाव स्वतः उत्पन्न होने लगता है। परन्तु जैसे ब्रह्म को स्वीकार किया गया है, इसी प्रकार हमारे यहां आत्मा को भी स्वीकार किया गया है। महर्षि वायु मुनि जी ने यह वाक्य उच्चारण किया, तो ऋषि मुनियों में एक क्रान्ति उत्पन्न हो गई। वहां वायु मुनि महाराज के समक्ष महर्षि सन्धुत महाराज, जो महाराज कुरकात्री मुनि के पौत्र कहलाये जाते थे, वह भी उनके समीप और महर्षि कुरकात्री मुनि के पौत्र कहलाये जाते थे वह भी उनके समीप आ पहुंचे। आगे आदित्य जी महाराज, महर्षि अंगिरा जी इन सभी ऋषियों का समाज एकत्रित हो गया। यह सभा महर्षि मङ्गलेत्व महाराज के आश्रम में थी। एकत्रित हो जाने के पश्चात् मङ्गलेत्व महाराज का सभापति चुना। सभापति होने के नाते वहां वाद विवाद की शङ्कला प्रारम्भ होने लगी। हमारे यहां ऋषि मुनियों का आध्यात्मिक वेत्ताओं का वाद विवाद इस प्रकार नहीं होता, जो मानव मानव को

नष्ट करने की चेष्टा उनमें उत्पन्न हो। अपने आत्मा के उत्थान के लिए आत्मतत्व के लिये उनका विचार विनिमय चला करता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर! जब वह मङ्गलेत्व ऋषि महाराज से महर्षि भृगु आदि ऋषियों के प्रश्न उत्पन्न होने लगे, तो उस समय वायु मुनि महाराज को पुनः समय दिया गया और मङ्गलेत्व ऋषि महाराज ने यह कहा कि आज आप कुछ इनके प्रश्नों का उत्तर दीजिए। ऋषि मुनियों ने कहा कि महाराज! हम यह जानना चाहते हैं कि आप हममें सबसे श्रेष्ठ प्रतीत होते हैं, हम मन ही मन में आपको प्रणाम करते हैं, परन्तु हमारा यह प्रश्न है कि आत्मा को भी आप ब्रह्म की चेतना स्वीकार करते हैं, ऐसे ही आप आत्मा की चेतना को स्वीकार करते हैं, हम यह जानना चाहते हैं कि क्या चेतना भी भिन्न-भिन्न होती हैं, संसार में? हम केवल ब्रह्म की चेतना स्वीकार करते तो क्या आत्मा की चेतना भिन्न होती है? उनके प्रश्न का आदर करते हुए महर्षि वायु मुनिजी ने कहा है कि वास्तव में ब्रह्म की चेतना महान् सूक्ष्म है और उससे कुछ स्थूल रूप में आत्मा की चेतना स्वीकार की गई हैं। रहा यह वाक्य कि तुम ऐसा स्वीकार करने लगते हो कि ब्रह्म ही इस आत्मा के गर्भ में स्वीकार किया जाये, तो मैं इसे कदापि भी स्वीकार नहीं कर सकूंगा।

उस समय ऋषि मुनियों ने पुनः यह कहा कि जब ब्रह्म अति-सूक्ष्म है जैसा तुमने अभी इन शब्दों में उच्चारण किया था और इससे पूर्व विचार धाराओं में कि यह जो आत्मा है यह मानो केश के गोल भागके साठ विभाग किये जायें और साठवां जो भाग है उसके ९९ भाग किये जायें उस ९९ वें भाग को

आत्मा के तुल्य स्वीकार किया गया है और ब्रह्म का जो आकार स्वीकार किया गया है वुद्धि के आंगन में वह केवल जो ९९ वां भाग है उसके ९९ भाग करो और जो ९९ वां भाग है उसके साठ भाग करो और साठवें भाग को आपने ब्रह्म को आत्मा स्वीकार किया है तो तुम में ब्रह्म का प्रविष्ट क्यों नहीं स्वीकार कर रहे हो ?

इसका उत्तर देते हुए महर्षि वायु मुनि महाराज ने वेद के कुछ शब्दों को उच्चारण करते हुए कहा कि "ब्रह्मा व्यापय प्रभे अस्तिः अप्रति रूद्रो मा मान्च प्रति कृतानि रूद्राः अश्वेति रूद्रो भागं मम्वेति अक्सत्म् आमांचि आत्मा नध्यम् प्रमेणे अक्स्ति सुप्रजा।" उन्होंने कहा कि यदि जब हम आत्माके स्वभाव को भिन्न स्वीकार करते हैं तो ब्रह्म को उसमें प्रविष्ट होने की आवश्यकता हम क्यों स्वीकार करें ? इसका हमें उत्तर दीजिये। इसमें भृंगी ऋषि जी ने कहा कि उसको इसलिये स्वीकार किया जाए, क्योंकि जगत् में एक ही ब्रह्म है जो महान् सूक्ष्म है, और वह सब जगह ओत-प्रोत है, वह मानो आत्मा में और प्रकृति सब में ओत-प्रोत हो रहा है। इसमें महर्षि वायु मुनि जी ने कहा है कि यह वेद का शब्द कहता है "सन निधानम् प्रभे अकृति रूद्रो अणु प्रमाणाः अकृति रूद्राः" उस समय वायुजी नेकहा कि इस वाक्य को मैं इस प्रकार स्वीकार किया करता हूँ कि वास्तव में ब्रह्म को सर्वत्र ओत-प्रोत स्वीकार करने में हमारा कोई मतभेद नहीं है। परन्तु यदि यह स्वीकार किया जाये कि आत्मामें ही ब्रह्म प्रविष्ट होता है, तो यह प्रतीत होता है कि आत्मा के गर्भ में ब्रह्म विराजमान है। वह जो ब्रह्म की चेतनाहै वह जब प्रकृति का स्वभाव उत्पन्न कर देती है तो क्या इसी प्रकार आत्मा के स्वभाव को उत्पन्न नहीं कर सकेगी ?

उस समय महर्षि भृंगी जी ने कहा "सौमाम् प्रति बद्धयं नाम प्रणे अस्ति व्यापम ब्रह्मे व्यापको नत्य प्रमाणाः अस्ति सुप्रजा:" कि वही व्याप्य और व्यापक का सूक्ष्म ? उत्पन्न होने लगता है जब प्रकृति में चेतना उत्पन्न हो जाती है, प्रकृति का स्वभाव उत्पन्न हो जाता है परन्तु आत्मा का स्वभाव क्या है ? आत्मा का जो स्वभाव है वह भी जैसे ब्रह्म में कुछ चेतना है इसी प्रकार चेतनता उसमें स्वीकार की जाती है और जब इसमें चेतना स्वीकार की जाती है, तो हम यह जानना चाहते हैं कि आत्मा की चेतना का स्वभाव क्या है ? उस समय वायु जी ने कहा कि आत्मा की चेतना का जो स्वरूप है, वह केवल वाणी का विषय नहीं है, यह सब अनुभव का विषय माना गया है। परन्तु जब वायु मुनिजी ने ऐसाकहा तो भृंगी जी ने कहा कि जब यह अनुभव का विषय है तो ब्रह्म का विषय भी अनुभव का स्वीकार कर लेना चाहिए। यह कैसे स्वीकार किया जाता है कि प्रकृति की स्वयं चेतना उत्पन्न हो जाती है, प्रकृति का स्वभाव क्या है ? प्रकृति का जो स्वभाव है वह जड़ता है, जड़वत् होने के नाते सूक्ष्म सा सन्निधान होते ही उसका स्वभाव उत्पन्न हो जाता है। मानो उन्होंने कहा कि जब उसको व्याप्य और व्यापक होते ही उसका स्वभाव क्या है जो उत्पन्न हो जाता है ? उन्होंने कहा कि प्रकृति का स्वभाव है रचना, उसकी रचना उत्पन्न होने लगती है जैसे ब्रह्म की केतना से यह बाहरीय जगत् उत्पन्न हो जाता है, इस का प्रसारण हो जाता है, इसमें व्यापकवाद की उत्पत्ति हो जाती है मानो उसका स्वभाव उत्पन्न हो जाता है, इसी प्रकार आत्मा की जो चेतना है, उसका भास चित्त पर आते ही चित्त अपना व्यापार कार्य प्रारम्भ कर देता है।

उन्होंने कहा कि क्या आत्मा चित्तवत् है ? उन्होंने कहा कि आत्मा चित्तवत् भी स्वीकार किया जाता और नहीं भी किया जाता। अब वायु मुनि जी के विचारों में एक महान् क्रान्ति उत्पन्न होने लगी। महर्षि भृंगी जी ने जब यह कहा कि क्या तुम आत्मा में चित्त को स्वीकार करते हो ? उन्होंने कहा कि वास्तव में आत्मा में व्यापार में चित्त स्वीकार करते हैं, परन्तु किसी काल में आत्मा चित्त से भिन्न स्वीकार की गई है। ऐसा भी स्वीकार किया गया है कि आत्मा में चित्त स्वीकार करने से ही आत्मा इसमें सन जाती है, इसमें लिपायमान हो जाती है किन्तु जहां चित्त में लिपायमान होने का प्रश्न उत्पन्न होता है वहां यह प्रश्न उत्पन्न हो जाता है कि यह जो आत्मा की चेतना है, आत्मा की जो परिस्थिति है, यह मानो केवल चित्त के ऊपर केवल आभास आता है, उसका एक प्रतिबिम्ब आता है जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब कुम्भाकार में आता है, वहां सूर्य उसमें लिपायमान नहीं हो जाता है।

इस प्रकार ऋषि मुनियों में जब यह वाक्य प्रारम्भ होने लगा तो और ऋषि मुनियों में वायु मुनि जी के प्रति और भी क्रान्ति आ गई। महर्षि आदित्य मुनि महाराज ने कहा कि महाराज आपका यह वाक्य तो सुन्दर है परन्तु हम कैसे स्वीकार करें ? हमें आत्मा में कैसे इसका विश्वास हो ? उन्होंने कहा कि आत्मा में जब विश्वास होगा, जब तुम इसके ऊपर तपस्वी बन जाओगे। जब वायु मुनि जी ने यह घोषणा की कि तपस्वी बनो तो ऋषि मुनियों में एक और क्रान्ति उत्पन्न होने लगी। महर्षि मङ्गलेत्वऋषि महाराजने कहा कि हमक्या जितने मानव हैं, इनमें तुमसे अधिक कोई तपस्वी ही नहीं है ? जब यह कटु शब्दों का प्रतिपादन होने लगा तो वायु मुनि महाराज मौन हो

गये और मौन होकर के कहा कि यह मेरा विषय नहीं है, वाद विवाद का। कटु शब्दों में आ जाना मेरा कोई विषय नहीं है मैं तो एक वाक्य जानता हूँ कि जो वाक्य तुम्हारे आंगन में या मेरे विचारों में नहीं आयेगा, वह केवल अनुभव का विषय रह जाता है, उसको वाणी उच्चारण नहीं कर सकतीं, क्योंकि ब्रह्म का जो वास्तविक स्वरूप है उसको तुम बुद्धि से जानकारी में नहीं ला सकोगे। इसलिए उसको अनुभव किया जाये और अनुभव करने के पश्चात् देखेंगे कि तुम कोई वाक्य भी उच्चारण कर सकोगे। आदित्य मुनि महाराज ने कहा कि वास्तव में वाक्य तो आदरणीय है। इस वाक्य को हम आदर पूर्वक स्वीकार करने के लिये तत्पर हैं क्योंकि ब्रह्म का विषय, आत्मा का विषय अन्तिम जो इसकी परम्परा है, वह सब अनुभव का विषय रह जाता है।

तो मेरे प्यारे ऋषिवर ! हमारे यहां परम्परागतों से यह स्वीकार किया गया है कि हम ब्रह्म की चेतना में संलग्न हो जायें, और आत्मा की चेतना को स्वीकार करते हुये वास्तव में उन वाक्यों को अनुभव में लाने का प्रयास करें। जब मानव इसका अनुभव कर लेता है, बुद्धि से परे इसका अनुभव हो जाता है तो उस समय उसकी वाणी यहां संसार के तत्वों में उसकी रुचि उच्चारण करने के लिये तत्पर नहीं होती।

मुनिवरो वाक्य प्रारम्भ हो रहा था कि जैसे माला में धागे और मनके होते हैं, इसी प्रकार वेद की जो प्रत्येक ऋचा है वह 'ओं' रूपी धागे से पिरोया हुआ है। ओं रूपी धागे से पिरोया हुआ होने के नाते से वह संकलावद्ध हो रहा है। इसी प्रकार वह जो ब्रह्म की चेतना है, इसमें यह सब जितना जगत् है, यह मनके के स्वरूप में परिणत हो रहा है। परन्तु जैसे

धागा पृथक् है, अकर्त्ता है क्योंकि प्रकृति के स्वभाव में संकलाबद्ध होने के नाते। इसीलिये हम उस परब्रह्म परमात्मा की याचना किया करते हैं कि हे परब्रह्म परमात्मा हे चैतन्य देव! हम आपकी आराधना कर रहे हैं क्योंकि आपका ही स्वरूप हमें प्रकृति में प्रतीत होने लगता है, प्रभो इसलिये हम आपको बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं।

बेटा! आज मैं इसे वाद-विवाद का विषय नहीं बनाना चाहता हूं। मैंने कल के वाक्यों में यह कहा था कि इस सिद्धान्त में हमारा निजी क्या विचार है। देखो मैं कई काल में परमात्मा को कर्त्ता भी स्वीकार करता चला आया हूं, परन्तु कई काल में इसको अकर्त्ता भी स्वीकार किया गया है। हमारा जो सर्वभौम सिद्धान्त है, विचारधारा है, बुद्धि की जो अन्तिम प्रणाली है वह हम भी वायुमुनि जी के सिद्धान्त को स्वीकार करते चले आये हैं। रहा यह वाक्य कि इस वाक्य को इस प्रकार स्वीकार करने लगूं कि हमारा "प्रधिग्रस्तवम् ब्रह्म आभ्यास्ति सुद्रा" यह संसार कैसे यह स्वीकार करता है ब्रह्म को बेटा! इस वाक्य में मुझे अधिक जानकरी नहीं है परन्तु मैंने ऋषि-मुनियों के सिद्धान्त तुम्हारे समक्ष नियुक्त किये हैं, जो भी तर्कवाद से बुद्धि संगत होता है उस वाक्य को अन्तिम परम्परा कहते हैं और उसको मानना बुद्धिमानों का कर्त्तव्य होता है। सबसे ऊंचा जो कर्त्तव्य है, वह इसको इसी प्रकार स्वीकार किया जाता है।

(महानन्द) गुरु जी! मैं आपसे एक प्रश्न करने वाला था। आपने दो प्रश्नों के लिये कहा था क्योंकि आधुनिक काल का जो जगत् है वह दो प्रकार का सिद्धान्त स्वीकार करता है। एक यह है कि वह जो ब्रह्म है वह आत्मा में विराजमान

है; और आत्मा को, प्रकृति को, गति देने वाला ब्रह्म है और एक यह स्वीकार करता है कि जैसे कुम्भाकार में जल है और उसी जल को समुद्र में अर्पित कर दिया जाये तो वह भी समुद्र बन जाता है इसी प्रकार एक ही ब्रह्म है और एक ही ब्रह्म में यह सर्वंश जगत् ओत-प्रोत है। एक सिद्धान्त यह है जो आधुनिककाल परिणत हो रहा है, जो वर्त्तमान काल में मैं दृष्टिपात कर रहा हूं। आज मैंने सूक्ष्म शरीर से मानव की प्रवृत्तियों का भी कुछ निरीक्षण किया है परन्तु जहां यह वाक्य प्रारम्भ हो रहे हैं यह बहुत सुन्दर "प्रति अस्ति सु प्रजा आश्वानि गथ्यन् न विश्तिती।" तो भगवन्! कुछ इस प्रकार की विचार धारायें हैं। कुछ मानवों में मुझे यह गति प्रतीत हुई कि एक आचार्य दयानन्द जी हुये हैं जिनको हम ऋषि भी कहते हैं जिन्हें हमारे यहां पूर्व काल में शमीक ऋषि के नामों से उनकी आत्मा का उत्थान स्वीकार करते हैं, आपने और मैंने पूर्व काल में इस वाक्य को स्वीकार किया था, आधुनिक काल में उसको दयानन्द के नाम से परिणीत किया जाता है, तो उन्होंने (मानवों ने) आपके काल के शब्दों से कहा है कि ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त को समाप्त कर दिया।

(हास्य के साथ) बेटा! वास्तव में यदि जब वह पुनीत पवित्र आत्मा शमीक ऋषि की थी उस समय यह वाक्य होने तो हम यह जानकारी कर लेते। इसमें क्या बात है। रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल का समाज किसी के, गुरु के सिद्धान्त को हम स्वीकार नहीं करते, तो इसका अभिप्राय यह नहीं कि हमें उसके वाक्य को स्वीकार ही करना है, क्योंकि यदि संसार में मानव यह स्वीकार करने लगे कि एक मानव ने जो शब्द उच्चारण किया है वह सर्वभौम सिद्धान्त हो गया

है, इसका अभिप्राय यह नहीं है। यह तो मानव की बुद्धि है, मानव का तर्क है, मानव का सिद्धान्त है, इसमें सब स्वतन्त्र है, क्योंकि यह जो ज्ञान है, यह भी परमात्मा की एक अनुपम धारा है, यह अनन्त है. जैसे ब्रह्म अनन्त है, और प्रकृति अनन्त है, इसी उसमें जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह भी अनन्त है। इस अनन्तता को तुम सीमितता में लाना चाहते हो तो बेटा! यह वाक्य तो मेरे आंगन में स्वीकार नहीं किये जाते, क्योंकि यह न आने वाला वाक्य है। रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल का समाज यह क्या कहता है कि "एको ब्रह्मा" मानो एक ही ब्रह्म के गर्भ में है, तो मैंने पूर्व ही आदित्य और महर्षि अंगिरा जी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता चला आ रहा हूं, और उनको तर्कवाद पर लाने के लिये मैं सदैव तत्पर रहता हूँ। रहा यह वाक्य कि चाहे कोई दयानन्द आचार्य हो कोई भी मानव हो और इस संसार के ज्ञान-विज्ञान को एक सूक्ष्म सी बुद्धि से अपने आंगन में लाना चाहता है तो बेटा! मैं यह वाक्य स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि परमात्मा का ज्ञान अनन्त है। बेटा! तुमने यह स्वीकार किया होगा कि आत्मा कितनी सूक्ष्म है और उससे अति सूक्ष्म ब्रह्म है। ब्रह्म की जो अति सूक्ष्मता है, चेतना है, अति ब्रह्म का जो स्वरूप है क्या उसे मानव वाणी से उच्चारण कर सकता है, परन्तु यह असम्भव है। रहा यह वाक्य कि वेदों से यह वाक्य आते हैं, क्योंकि वेदों का ज्ञान अनन्त है। एक एक शब्द की कामनाएँ व्याख्यायें होती है। एक ही व्याख्या नहीं होती, अनन्त व्याख्या हो सकती है, और नाना प्रकार की व्याख्यायें होती हैं और नाना प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की धारायें भी उत्पन्न हो सकती हैं, परन्तु मैं कोई सन्देह का वाक्य नहीं उच्चारण करना चहाता,

जो सर्वभौम सिद्धान्त है, मैंने उन वाक्यों को तुम्हारे समक्ष प्रकट किया है। तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देते हुये कहा है। यह वाक्य बहुत पूर्व काल के पश्चात् यह वाक्य बेटा! तुम्हारे समक्ष आ गया। मैं इन वाक्यों को उच्चारण करने के लिये तत्पर नहीं होता हूं। यह तो इसलिये क्योंकि तुम्हारा गम्भीरता से प्रश्न था। न प्रति कहा से तुम इस वाक्य को लाये हो, इसलिये मैंने उत्तर दे दिया है। मैं तो सदैव ही ब्रह्म की महिमा को गाता रहता हूं और उसकी महिमा का गुण गान गाना ही चाहिये, प्रत्येक प्राणी को। अब रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल में कोई सम्प्रदाय या कोई भी अस्वस्त स्वीकार नहीं करता हैं।

(महानन्द) "भगवन्! आप ऐसा उच्चारण नहीं कर सकते क्योंकि ऋषि दयानन्द को हम सम्प्रदाय स्वीकार नहीं करते।"

"हां हां बेटा! तुम्हारा यह वाक्य सत्य है कि तुम सम्प्रदाय स्वीकार नहीं करते हों, परन्तु सम्प्रदायवाद वहां आ जाता है, जब एक ही ऋषि के वाक्यों को सार्वभौम सिद्धान्त स्वीकार कर लेके हैं। तो बेटा! उसमें रूढ़ि आ जाती है और रूढ़ि आ जाने का नाम ही हमारे यहां सम्प्रदाय कहते हैं। इसमें ऐसा कोई वाक्य नहीं कि तुम्हें इस पर क्रोध आ जाये। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम दयानन्द के सिद्धान्त को स्वीकार करते हो।

(महानन्द हास्य के साथ) भगवन्! ऐसा तो नहीं है क्योंकि ऋषि मुनियों के तो सभी के विचार स्वीकार कर लेने चाहियें।"

"हां हां हमारा इसमें कोई पृथक् विचार तो नहीं है हम

इन वाक्यों को स्वीकार करते हैं। प्रश्न यह है कि जो व्यक्ति होते हैं उनकी प्रसंशा करनी ही चाहिये। परन्तु रहा यह वाक्य कि हमारे विचारों में परिवर्तन लाना चाहता हैं तो वेटा! जो तपे हुए विचार होते हैं, उनमें परिवर्तन किसी भी काल में नहीं आया करता है, क्योंकि हमारे विचार परम्परा से तपे हुये हैं। अब तुम इन संसार के वाक्यों को चुनकर हमारे समीप लाओ, तो यह वाक्य स्वीकार नहीं किया जाता क्योंकि जहां परमात्मा की दया को स्वीकार करते हैं बेटा! अन्तिम प्रणाली जो बुद्धि की होती है, उस पर जाना चाहिये। क्योंकि नीचे यह वाक्य स्वीकार कर सकते हैं कि परमात्मा न्यायकारी भी है, दयालु भी है। किन्तु जब उसको तर्कवाद पर लाते हैं, बुद्धिवाद पर लाते हैं, प्रज्ञावादी बुद्धि के आंगन में लाते हैं, तो उस समय हमें यह सिद्धान्त प्रतीत होता है। परन्तु नीचे तो सभी को यह स्वीकार कर लेना चाहिये क्योंकि यदि इन वाक्यों को जो मैंने अभी-अभी तुम्हारे समक्ष नियुक्त किये हैं, इस सिद्धान्त से अपठित प्राणियों में क्रान्ति आ सकती है, क्रान्ति आने की सम्भावना रहती है। इसलिये हमें प्रारम्भ में यह वाक्य उच्चारण में कोई दोषारोपण नहीं होता क्योंकि परमात्मा न्यायकारी है दयालु है। ज्ञानमार्ग में और भक्तिमार्ग में बड़ी भिन्नता होती है, क्योंकि जो भक्तजन होते हैं वह सर्वश परमात्मा को कण-कण में स्वीकार करते हुये, उसकी याचना करते हुये, अपने को इस संसार से पार ले जाते हैं। परन्तु उन मानवों का संसार में गिरने का भय रहता है। भय की प्रतीति इसलिये होती है, क्योंकि उनमें विवेक तो होता है, कण कण में होने के नाते, परन्तु बुद्धिवादी का जो ज्ञान है, उस ज्ञान का जो विवेक है, वह उनके समीप

न होने के कारण, यहां गिरने का सन्देह रहता है। तो मैं इस वाक्य को अधिक विडम्बना में नहीं ले जाना चहाता हूँ। रहा यह वाक्य कि यह मानव क्या स्वीकार करता है बेटा! यह वाक्य बहुत गम्भीर है। यह कोई शास्त्रार्थ का विषय नहीं रह जाता है। यह तो केवल अपने विचारों का और अनुभव का विषय है, तपस्या का विषय है क्योंकि जो प्राणी संसार में तपते नहीं हैं, उन प्राणियों को एक एक वाक्य का भय रहता है और भय इसलिये रहता है कि वह यह जानते रहते हैं कि कहीं तुम्हारा वाक्य नष्ट न हो जाये, कहीं तुम्हारा वाक्य मिट न जाये, तो यह मानव के मन में प्रवृति रहती है। क्योंकि प्रत्येक मानव यह चाहता है जो भी संसार में आता है कि जिस सिद्धन्त को वह स्वीकार कर लेता है उसकी वह पुष्टि करता है कि वह वाक्य मिट न जाये, अमिट रहना चाहिये। बेटा! यहाँ यह वाक्य तो है नहीं। तुमने यदि इसका प्रश्न किया है तो मैंने उसका सुन्दर रूप से उत्तर दे दिया है। तुम परम्परा से जानते हो कि मैंने कितने समय के पश्चात् इन वाक्यों को उच्चारण किया है। यह भी तुम्हारे प्रश्नों के अनुसार हम वाद-विवाद की वेदी पर न जायें, परन्तु इसको विचार की वेदी बनाये, विचार करें और तर्कवाद पर ले जायें और इस तर्कवाद से, भी सिद्ध न हो तो तपस्वी बनें, मौन हो जायें, उस ब्रह्म की चेतना में मानो आत्मा की चेतना में अपने को अनुभव करें, आत्मा में विश्वासधारा को उत्पन्न करें तो बेटा! यह सब वाक्य सिद्ध हो सकते हैं। इसमें कोई विवाद नहीं है। रहा यह वाक्य कि आधुनिक काल का मानव एक ही ब्रह्म को स्वीकार करता है। वास्तव में मानव को ऐसा प्रतीत होने लगता है कि एक ही ब्रह्म है, क्योंकि जिस

समय यह आत्मा के स्वरूप में अथवा ब्रह्म के स्वरूप को अपने में एकत्रित कर लेती है और ब्रह्म के स्वरूप को यह जान लेती है केवल अगम्मता से और उस अनुभव से जो वाणी से उच्चारण नहीं किया जाता, उस योगी को ऐसा प्रतीत ही होने लगता है कि संसार में एक ही ब्रह्म की चेतना है और यह जो जगत है यह परिवर्तन होने वाला है और ब्रह्म की एक चेतना है जो संसार में चेतित मानी गई है। तो बेटा! यह वाक्य उस काल में होता है, जब मानव का बुद्धिवाद समाप्त हो जाता है। मैंने तो तुम्हारे समक्ष बुद्धिवादियों की चर्चा प्रकट की है और वह बुद्धिवादियों के वाक्य भी तर्कसंगत हैं, इसलिये इस वाक्य को स्वीकार करने में किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं होना चाहिये। यदि इस वाक्य को मैं और गम्भीरता में ले जाऊं तो यह भी मुझे शोभा नहीं देता।

परन्तु मैंने ब्रह्म के, आत्मा के, और ब्रह्म और प्रकृति और आत्मा के, कुछ रूप को वर्णन किया है। अब तुम भी बेटा! इस सिद्धान्त को परम्परा से स्वीकार करते चले आये हो। इसीलिये मैं कहा करता हूँ कि तुम इस वाक्य को कहीं से लाये हो? क्योंकि "मैं" का शब्द हमारे से शोभा नहीं देता कि हम "मैं" का शब्द उच्चारण करें, क्योंकि "मैं" में ही तो प्रकृतिवाद होता है। जितना भी यह मानव है यह "मैं" में ही प्रकृतिवादी होता है। जैसे 'ओं' का उच्चारण होता है "अ" "उ" और "म", मानो ओं जो शब्द है यह सार्वभौम शब्द हैं।

यह ब्रह्म का वाची है और "उ" आत्मा का वाची है और यह जो "म" है यह प्रकृति का वाची शब्द है। क्योंकि प्रकृतिवादी ही "मैं" का उच्चारण किया करते हैं। यह मेरा आश्रम है, यह मेरा शरीर है, यह मेरा आत्मा है यह मेरा परिवार है, यह मेरा जगत् है, यह मेरा देश है मानो इस प्रकार जो "मैं" की प्रवृत्ति है यह सब प्रवृत्ति प्रकृतिवाद में आती हैं। तो बेटा! मैं यह उच्चारण करना चाहता हूं,तुम मुझे 'मैं'में लाने की प्रवृत्ति न करो क्योंकि'मैं'का शब्द हम उच्चारण नहीं करना चाहते। जितना भी 'मैं'वाद वह सब प्रकृतिवाद है। और जितना 'ओं' वाद है मानो विचारवाद है, 'हम' वाद है, यह सब ब्रह्मवाद माना गया है। इसीलिये हमें मैं' का प्रति-पादन 'मैं' का उच्चारण करना भी, हम यह स्वीकार करते हैं कि 'मैं' का संस्कार चित्त में यदि अंकुरित हो गया, तो इसका वृक्ष होगा और वृक्ष होगा तो बेटा! प्रकृतिवाद में पुनः से आना होगा। तो इसीलिये हमारा जो यह शब्द है इस वाक्य को तुम 'मैं' में न लाना, क्योंकि जब अधिक कुतर्क होने लगता है, तो मानव को 'मैं' में आना स्वाभाविक हो जाता है, इसीलिये कुतर्क नहीं होना चाहिये केवल तर्कवाद होना चाहिये।

रहा यह वाक्य कि हम यह स्वीकार करते रहते हैं कि जैसे तुमने दयानन्द की आत्मा का प्रश्न किया,जब वह आत्मा शमीक ऋषि के रूप में थी तो बेटा! वह इन्हीं वाक्यों का समर्थन करती थी, इन्हीं वाक्यों को स्वीकार करती थी। उन्हीं वाक्यों

को ले करके उन्होंने त्रैतवाद को स्वीकार किया है। यदि उनके पुरातन के संस्कार नहीं होते शमीक ऋषि वाले, मां का जो प्रीति ऋषिवर का वाक्य था अट्टूटीजी, यदि वह माता उसे सुन्दर नहीं बनाती उसका सुन्दरत्व न होता, तो यहां संसार में वेटा ! जेसा हमें प्रतीत हुआ है वायु मण्डल से, परमाणुवाद से, देखो उस भयंकर काल में आ करके उस महान् विभूति ने त्रैतवाद की घोषणा की, और उनका वह शब्द अकाट्य रहा है। इसीलिये उनका आदर करना चाहिये। उस पवित्र ऋषि आत्मा का आदर करना हमारा स्वभाव है क्योंकि आदर करने में हमारा कोई अग्रित नहीं होता, हम अकटित नहीं होते। अन्यथा जहां एकवाद हो वहां त्रैतवाद की कोई महत्वता नहीं रह जाती है, वहाँ त्रैतवाद नहीं रह जाता है। इसलिये त्रैतवाद का प्रसार अधिक हुआ, क्योंकि वह एकवाद में अधूरे थे। अधूरे इसलिये थे क्योंकि एकवाद वह प्राणी उच्चारण कर सकता है, जो मानव ब्रह्म के स्वरूप में अपनी आत्मा को परिणत कर देता है और वह अनुभव का विषय, मानो वह एकवाद की घोषणा वह किसी भी काल में नहीं कर सकता वेटा ! इसलिये हमारा जो यह वाक्य है वह इसलिये है क्योंकि वास्तव में संसार के प्राणियों में ज्ञान की प्रतिभा होनी चाहिये। आज हम इन वाक्यों को लेकर अधिक टिप्पणी नहीं करना चाहते क्योंकि वाक्य का समय समाप्त ही होने जा रहा है।

आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हमारा जो विचार

का विषय है, उसको विचारमय बनाना चाहिये। जो विवाद का विषय है, विवाद किन वाक्यों का करोगे ? मानो जो मानव संसार में दुराचारता में रहता है, जो आत्मविश्वासी नहीं होता बेटा ! उसका तुम सदैव संसार में विरोध करते रहो, उसके प्रति अपना वाद प्रकट करते रहो। और जो मानव चिन्तनवादी है, ब्रह्म का चिन्तन करता है, आत्मा का चिन्तन करता है, प्रकृति का चिन्तन करता है, सिद्धान्त में ऊंचा चला जाता है, उसका सदैव आदर करना चाहिये। और संसार में नास्तिक प्राणी वही होते हैं जो वेद के पठन-पाठन करने वाले होते हैं। जो वेद को यह कहता है कि मैं वेद को स्वीकार नहीं करता और (परन्तु) वह चरित्र को स्वीकार करता है, वह नास्तिक नहीं। एक मानव वेद का पठन-पाठन करने वाला, अक्षरों का, परन्तु दुराचार में है, तो बेटा ! जो वेद को स्वीकार नहीं करता, वह उस वेद-पाठी से कहीं सुन्दर कहलाया जाता है। इसीलिये वेद का ऋषि कहाता है, आचार्य कहता है कि वेद नाम प्रकाश का है, प्रकाश में मानव को परिणित हो जाना चाहिये मानव को अंधकार में नहीं रहना चाहिये। इस प्रकृति के आवेशों में रहना है, परन्तु इनके इतने आवेशों में नहीं रहना चाहिये कि उसकी आत्मा का जो विश्वास है, आत्मा में जो तन्मय हो जाना है, उससे वह दूर हो जाये।

इसीलिये महापुरुषों का परम्परासे यह कर्त्तव्य चला आया

है कि जो मानव दुराचार में परिणत होते हैं उससे शान्त रह करके, उसका मन ही मन में विचार करो, मानो मन ही मन में उसके प्रति घृणा उत्पन्न हो जानी चाहिये। वास्तव में ऋषि-मुनियों ने तो यहां तक कहा है कि घृणा भी मानव संस्कारों का जन्म होता है, इसलिये घृणा भी मत करो। परन्तु यदि घृणा करनी है, तो आत्मा से नहीं, परन्तु वह शब्दों से करो, क्योंकि शब्दों की जो घृणा है, वह संस्कारों का जन्म नहीं देती और जो मन का चिन्तन घृणा का है, वह मानव को जन्म जन्मान्तरों में ले जाता है। इसीलिये हमारे यहां मन से भी घृणा नहीं करनी चाहिये। केवल शब्दों से घृणा करनी चाहिये। हमारे यहां ऋषि-मुनि स्पष्ट उच्चारण किया करते थे। मुझे स्मरण आता रहता है जब माता गार्गी राजा जनक की सभा में पहुंची। महान् सभा थी, वह नग्न रहती थी, उस समय राजा जनक ने कहा हे गार्गी ! तुम मेरी सभा में नग्न आ रही हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती, उस समय सात्विक शब्दों में क्या कहा था गार्गी ने कि हे राजा जनक ! क्या तू ब्रह्म ज्ञान में परिणत होना चाहता है ? जब तुम एक कन्या को नग्न नहीं दृष्टिपात कर सकते, तो तुम ब्रह्म ज्ञान को क्या प्राप्त कर सकोगे। बेटा ! जब इन शब्दों का राजा जनक के अन्तःकरण में प्रहार हुआ, तो राजा जनक उनके चरणों में ओत-प्रोत हो गये।

वाक्यों के उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है ? कि

मानव को शब्दों से ही घृणा करनी चाहिये, यदि घृणा करनी है तो। राजा जनक की सभा में गार्गी ने वह वाक्य प्रकट किये जिन्हें कोई मानव श्रवण भी नहीं कर सकता था। परन्तु [कोई] राजा जनक सात्विक था और मन से घृणा नहीं थी। जो मानव मन से घृणा करता है, उसका संसार में कहीं आदर नहीं होता है। जब उसका आत्मा में ही आदर नहीं होता, मानव के शरीर में ही उसके विचारों का आदर नहीं होता, तो यह बाह्य जगत् भी उसका आदर नहीं किया करता है।

तो हमें विचारविनिमय करना है, हम विचार की वेदी पर आये हैं, हमें सब वाक्यों को विचारविनिमय करके चलना है। क्योंकि वास्तव में मानव विचारों का क्षेत्र है। आजका हमारा यह वाक्य समाप्त होने जा रहा है। आज के हमारे वाक्यों का अभिप्राय है कि हम ब्रह्म की चेतना को स्वीकार करते हुये, उस ब्रह्म में परिणत होते चले जायें, उस ब्रह्म में लीन होते चले जायें जो सर्वत्र ओत-प्रोत है, प्रकृति उसी के सन्निधान से अपना कार्य कर रही है, परमात्मा अकर्त्ता रहता है। उसी में हमारा परिणित हो जाना, उसी में समाहित हो जाना, वह मुक्ति का एक प्रवल साधन, उन्नत प्रदीप, कहा गया है। जैसे हमने कपिलदेव के शब्दार्थों में कुछ वाक्य प्रकट किये थे। महर्षि कपिल मुनि महाराज ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में प्राण और मन की महत्वता स्वीकार की। परन्तु इन

दोनों के मध्य में, आत्मा की चेतना को भी स्वीकार किया था। अन्त में, क्योंकि यदि कोई आत्मा की चेतना को स्वीकार नहीं करेगा और इसको गुग और गुणी स्वीकार कर लोगे तो इसमें नाना प्रकार के दोषारोपण आ सकते हैं। तो इसीलिये इस वाक्यं को स्वीकार करना हमारा सभी का कर्त्तव्य है और परमात्मा की याचना करते हुये हमें इस संसार से जो मान अपमान वाला संसार है इससे हमें पार होना है इसके साथ हमारा वाक्य सामाप्त हो गया है। अब वेदों का पठन-पाठन होगा इसके पश्चात् यह वाक्य समाप्त होता गया।

धन्य हो भगवन् !

"तो भगवन् ! मैं तो कल भी प्रश्न करने वाला था"

"हास्य के साथ" वेटा ! समय आयेगा प्रश्न करते रहना, इसमें क्या वाक्य है।

"अच्छा भगवन् !"

तो अब वेद का पाठ होगा।

ब्रह्मचारी जी का हस्तलेख

-६८ ओ३म् ~~[illegible]~~ करनावा

श्री व्रजेनाथ जी नमस्ते अतर मकुसल

तत्रास्तु आगे समाचार यह है कि

याह मैं कुसल हुं और चरौरी से पत्र आ

गया है और उन का प्रोगराम १५ -

११-६८ को [illegible] २० नंबर तक भी चीत

हुवा है और ११-१२-१३ - रोतक

का है केशभी गेटबस अड्डे

पर पोंचजाना १ डेड बजे तक सत्त

में १०० कीतक ले चलना।

बच्चों को आसीरवाद

आपका ब्र० कृष्ण दत्त

ता० १-११-६६ के पत्र की प्रतिलिपि

...क निवे...

(१) ब्रह्मचारीजी के प्र...न स...
विषयक अनुसन्धान कार्य के लिये ...
का गठन किया गया है। इस कार्य ...
भारत भर के आस्तिक जन सदस्य ...
सदस्यता शुल्क कम से कम १) मासि...

(२) आस्तिकता का प्रचार एवं ...
रुचि उत्पन्न करना भी समिति का ...
से प्रतिवर्ष एक विशाल महायज्ञ का ...

(३) ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के प्रवचनों का प्रबन्ध जो संस्था या सज्जन अपने यहां कराना चाहें वे समिति कार्यालय से पत्र व्यवहार करें।

(४) ब्रह्मचारी जी के प्रवचनों के पहले दस भाग मं... हो सकते हैं जिनमें अनेक विद्वानों की सम्मति तथा ब्रह्मचारी जी का संक्षिप्त जीवन परिचय भी है। मूल्य प्रति पुस्तक १)२५ रुपया। डाक खर्च अलग। पुस्तक विक्रेताओं को विशेष रियायत दी जायेगी।

प्रति मास ब्रह्मचारी जी का एक नया प्रवचन ट्रैक्ट के रूप में भी निकलता है जिसका वार्षिक शुल्क ३) रु० है और डाक द्वारा आपके घर पहुँचा दिया जाता है। अधिक से अधिक इस ट्रैक्ट के सदस्य बन कर समिति को अपना सहयोग प्रदान करें।

मन्त्री
वैदिक अनुसन्धान समिति (रजि०)
प्रकाशन विभाग
III ई. ३१ लाजपतनगर ३
नई दिल्ली-१४

सार्वदेशिक प्रेस, दिल्ली-६